श्री सयाजीसाहित्यमाला-पुष्प ७८ वां

(चरित्रगुच्छ)

समुद्रगुप्त

अनुवादक

प्रोफेसर रविशंकर अंबाराम छाया
बी. ए. एल. एल. बी. एस. टी. सी. डी.

प्रकाशक

जयदेव ब्रदर्स बड़ोदा

इ. स. १९२२ }
संवत् १९७९ }

{ प्रथमावृत्ति
{ प्रति ५००

मूल्य

सजिल्द ॥।)   विनाजिल्द ॥=)

श्री प्रभुलाल शिवलाल ठक्कर द्वारा 'श्री भारतविजय प्रेस' मोदीखाना बड़ोदा में मुद्रित तथा श्री. ए. ए. दुदानी बी. ए. एलएलबी. व्यवस्थापक जयदेव ब्रदर्स बड़ोदा द्वारा प्रकाशित ता. २०-११-२२.

श्री

विज्ञप्ति

—o—

अपने देशी भाषा के साहित्य की अभिवृद्धि करने के सदुद्देश्य से **श्रीमंत महाराजा साहेब श्री सयाजीराव गायकवाड सेनाखासखेल,** समशेर बहादुर पतितपावन, जी. सी. ऐस. आई. जी. सी. आई. ई., ने कृपाकर दो लाख रुपएकी जो रकम सुरक्षित रखी है उसके व्याज में से **श्री सयाजीसाहित्यमाला** द्वारा अनेक विषयों के पुस्तक तय्यार किये जाते हैं।

यह 'समुद्रगुप्त' नामक पुस्तक रा. भरतरामकृत समुद्रगुप्त नामक गुजराती पुस्तक का हिन्दी अनुवाद है और उक्त ग्रन्थ माला के चरित्र गुच्छ के ७८ वें पुष्प के रूप में **श्री रविशंकर अंबाराम छाया** बी. ए. एल. एल. बी. द्वारा अनुवाद कराकर विद्याधिकारीकी भाषांतर शाखा द्वारा संशोधन कराकर प्रसिद्ध करते हैं।

विद्याधिकारी कचेरी भाषांतर शाखा. ७-१०-२२.	भा. नि. मेहता. भा. म.	नं. के. दीक्षित. विद्याधिकारी.

विदिशाका स्तंभ

ओ३म्

समुद्रगुप्त

अनुक्रमणिका

ओ३म्

समुद्रगुप्त

भूमिका

श्री सयाजीसाहित्यमालामें हिंदी की यह पांचवीं पुस्तक पाठकोंके सन्मुख प्रस्तुतकरतेहुए हमें बडी प्रसन्नताहोती है।

हर्ष का विषय है कि इस पुस्तक के अनुवादक गुजराती होनेपरभी हिन्दी के परम अनुरागी हैं। यह देश का सौभाग्य है कि अब हिन्दी भाषाको इस प्रकार लोग अपनाने लगे हैं।

प्रस्तुत पुस्तक जहां प्राचीन इतिहास तथा चक्रवर्ती सम्राट का दिग्दर्शन कराती है वहां इसके संबंध में कुछ वक्तव्य अप्रासंगिक न होगा।

विदितहो की ग्रंथकर्त्ताने जो कुछ विचार प्राचीन संस्कृति तथा शास्त्रों संबंधी दर्शाए हैं वह प्रायः वही हैं जो रातदिन सरकारी स्कूलोंमें छात्र युरपदेश निवासी विद्वानों की कल्पनाओंके आधारसे पढ़ते हैं। अपने देशके शास्त्रों तथा प्रामाणिक इतिहास के अनुसार निम्नलिखित बातें दर्शानी उचित हैं (१) इस देश में जब प्राचीन हिन्दु जिनको संस्कृत में आर्य्य कहते हैं आकर बसे तो उस समय कोईभी अनार्य जाति वा द्राविड प्रजा इत्यादि बसती नहीं थी यह बात महाभारतके आदि पर्वसे पुष्ट होती है। मनुस्मृति के मनन करने से विदित होता है कि द्राविड आर्य क्षत्रिय थे जो धर्म्म लोप से पीछे पतित होगए।

(२) प्रचीन आर्य्य त्रिविष्टपदेश से जिस को शास्त्रों में स्वर्ग लिखा है इस देश में आए। उत्तरीय ध्रुवको भी उन्होंने वहां से जाकर बसाया क्योंकि उत्तरीय ध्रुवकी प्रजा आजतक साईबेरिया में सैम्वेडी अर्थात् (सामवेदी) कहलाती है

जर्मन देशके प्रो० ओकन साहब और अमरीकाके डाक्टर तथा योगी एन्ड्रो जैकसन डेविस साहबका दृढ सिद्धान्त है कि आदिकाल में भूलोकपर आदि मनुष्य सृष्टि उस स्थलपर हुई जहां पर इस समय सबसे ऊंचा पर्वत है और हिमालय पर्वत सबसे ऊंचा भूखंड है इस लिये उनका कथन है कि

" निःसंदेह मनुष्य की आदिसृष्टि हिमालय प्रदेश में हुई । "

उस समय जब भूगोल जल निमग्न था तो सबसे पहिले जिआलोजी (भूगर्भ विद्या) के नियमानुसार वही प्रदेश पहिले बसनेके योग्यहुवाथा जो उस समय सबसे ऊंचा पहाड अर्थात् हिमालयहै । मौंटएवरस्ट को संस्कृतमें गौरीशंकर कहते हैं और अमरकोश आदि संस्कृत शब्दकोषोंमें त्रिविष्टपदेशको देवभूमि वा स्वर्ग कहागयाहै । महाराष्ट्र तथा गुजरातदेशमें जब किसीके मरनेपर कहा जाता है कि अमुक मनुष्य स्वर्गसिधारा तो उसको **कैलाश** सिधारा ऐसा कहते वा लिखतेहैं । किसी स्वर्गवासीराजाको कैलाशवासी राजा सदैव लिखाजाता है । विचारकरदेखेंतो कैलाशत्रिविष्टप वा हिमालय प्रदेशस्थहै । महाभारतमें जब युधिष्ठरादि हिमालय प्रदेशमें मृत्युसमय चलेगये तो इसको "स्वर्गारोहन" कहागयाहै।

(३) प्रो॰ मैक्समूलर का कथन है कि संसार के अन्दर सबसे प्राचीन ग्रंथ वेद है इस ग्रंथको २ या १० या २० हजार वर्ष मसीह से पूर्व कथन करने वाले सब भ्रान्ति में हैं । मनुस्मृति के प्रथम अध्याय में लिखाहै कि सृष्टि के आदिमें मनुष्योंको ईश्वर ने वेद शब्दों द्वारा ज्ञान दिया जिससे सिद्ध होताहै कि वेद तबसे ह जब से इस पृथिवीपर मनुष्यने जन्म लिया है ।

मनुष्यको आदिकाल में जो शब्दमय ज्ञान सृष्टिकेकर्त्ता की प्रेरणानुसार मिला उसको संस्कृत में यथार्थ ज्ञान वा वेद कहते हैं । यह वेद बहुत काल तक श्रुति रूप में रहा और इससे आदि मनुष्योकों ज्ञान तथा शब्दका खजाना मिला गया । फिर वही श्रुतज्ञान चार ग्रंथों के रूपमें जिसे ऋग, यजु. साम, और अथर्व कहते हैं संग्रह किया गया । वेदका ज्ञान आदि तथा ईश्वरका गुण होने से अनादि है और वेद आदि ग्रंथ हैं । वेद ज्ञान का कर्ता ऋषि नहीं किन्तु वहतो उसके मंत्रोंके द्रष्टा है ऐसा निरुक्त में लिखा है ।

(४) वैदिकसंस्कृति सर्वांगपूर्णथी और वैदिकप्रार्थनाएं उन्नतिपरक मनोकामना का प्रगटी करण हैं न कि पाठमात्र से किसी सिद्धिको प्राप्तहोना । अथर्ववेद में लिखाहै कि **यथा मांसं यथा सुरा** इत्यादि अर्थात् मांस और मदिरा का निषेध किया गया है और सोम रस गिलोय आदि ज्वर तथा रोग नाशक औषधिएंथीं

शराब बिलकुल नहीं। (५) वैदिक कालमें पुस्तक वा ग्रंथ रचे जाते थे और लिखने के साधन उनके पास थे यह बात महिर्षि पाणिनी के ग्रन्थों को जानने वाले पंडित जानते हैं (६) प्राचीन आर्य्य मनुष्यों की जन्मसे एक जाति मानते थे और गुणकर्म्म से दो भेद एक आर्य दूसरे अनार्य अथवा दस्यु। वेद में मनुष्य मात्र की एक जातिका वर्णन है और शुभ गुण कर्म वाले मनुष्यों को वेद में आर्य्य और अनाचारियों को दुष्ट गुणकर्म के कारण अनार्य वा दस्यु कहा गया है।

आर्य्य मनुष्यों के समाज के ४ विभाग गुणकर्म से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र किये गये हैं और यह बात लोकमान्य बालगंगाधर तिलकने अपनी गीतारहस्य की भूमिका में भी लिखी है। मनुष्य को अछूत वेद में नहीं कहा परंच शूद्रके लिये यजुर्वेद में कहा गया है कि **तपसा शूद्रं** यजु० अ ३० मं. ५ अर्थात् उत्तम कर्मोंके लिये शूद्र हैं।

(७) वेदों में जो गंगा आदि शब्द आए हैं वह यौगिक हैं और योगशास्त्र प्रदर्शित नाड़ियों के नाम हैं। भारत वर्ष के भूगोल की नदियों से उनका कोई संबंध नहीं। गंगातट पर बैठकर ऋषियोंनें वेद बनाए यह बात भ्रान्तिजनक है।

(८) वर्ण व्यवस्था गुणकर्म से थी न कि जन्मसे। (९) वेदों को ऋगयजु साम और अथर्व चार भागों में ब्राह्मणों ने नहीं बनाया और न ही मंत्र रचनेवाले ब्राह्मण वा ऋषि थे कारण कि निरूक्त में लिखा है कि **ऋषयोः मंत्र द्रष्टाराः**। अर्थात् मंत्रों का यथार्थ मनन करने वाले ऋषि होते हैं न कि रचने वाले (१०) शतपथ ब्राह्मण एक अति प्राचीन ग्रन्थ यजुर्वेद पर व्याख्यान रूपमें है इस ग्रन्थ के १३-१-६-३ पृष्ट ६३८ पर लिखा है

राष्ट्रं वाऽअश्वमेधः। राष्ट्रऽएते व्यायच्छन्ते येऽश्वꣳरक्षन्ति तेषां यऽउदृचं राष्ट्रेणैव ते राष्ट्रं भवन्त्यथये नोदृचं गच्छन्ति राष्ट्रात्ते व्यवच्छिद्यन्ते तस्मादराष्ट्र्यश्वमेधेन यजेत परा वाऽएष सिच्यते योऽविलोऽश्वमेधेन यजते यद्यमित्रा अश्वं विन्देरन्यज्ञोऽज्ञोस्य विच्छिद्येत पापीयान्त्स्याच्छतं

कवचिनो रक्षन्ति यज्ञस्य संतत्या ऽ अव्यवच्छेदाय न पापी याम्भवत्यथा-
न्यमानीय प्रोक्षेयुः सैव तत्र प्रायश्चित्तिः ॥ ३ ॥ ब्राह्मणम् ॥ ६ ॥

अर्थ--राष्ट्र का नाम अश्वमेध है। राज्य में जो यह काम करते हैं वह अश्व की रक्षा करते हैं उनमें से जो ऋचा पर नहीं चलते वह राज्य से भ्रष्ट होजाते हैं इस लिए राज्य की इच्छा करने वाले अश्वमेध (राष्ट्रप्रबन्ध) द्वारा यज्ञकरे। जो बलसे रहित अश्वमेध के साथ यज्ञ करता है उसका बहुत देरसे अभिषेक होता है यदि मित्रों से रहित अश्वमेध राजयज्ञ करे तो उसका यज्ञ नाश हो जावे आगर राजा पापी हो जावे तो सैंकडों महावीर यज्ञ की रक्षा करते हैं (वा करें) पापी नहीं होना चाहिए उसके स्थान पर दूसरे का अभिषेक करना चाहिए यही इसका प्रायश्चित्त है।

अथगौः। प्राणमेवैतयात्मनस्त्रायते प्राणो हि गौरन्नꣳहि गौरन्नꣳहि प्राणस्ता-ꣳरुद्राय होत्रे ददात् ॥ कां ४-३-४-२५ शतपथ पृ. २३१ (अर्थ) गौ के विषयमें। प्राण ही इससे अपनी रक्षा करता है प्राण ही गौ अन्न ही गौ है। गो रूपी अन्नही प्राण है उसको होताने रुद्र (बलवान) को दिया। इस से गो शब्द के अर्थ अन्न प्राण का प्रगट होता है।

प्रोफेसर मैक्समूलर " फिजिकल बेसिस ऑफ रिलिजन " नामी ग्रंथमें लिखता है कि यज्ञ के अर्थ बलिदान के नहीं किन्तु **कार्य्यवाकर्म** के हैं।

दूसरे महोदय कोलब्रुक एक स्थलपर लिखते हैं कि

"The Ashwamedha and Purushmedha celebrated in the manner directed by this Yajurveda are not really sacrifices of horses and men."

(अर्थ) अश्वमेध और पुरुषमेध जो इस रीतिपर इस यजुर्वेद अनुसार किये जाते थे वह वास्तव में घोडों और मनुष्यों के बलिदान नहीं हैं।

वाचस्पत्यबृहदभिधान नामो संस्कृत कोष में जो पं० तारानाथ तर्क वाचस्पति ने बनाया है उस में **मेध** तथा तदन्त अर्थवान् शब्द संबंधी कुछ लिखा

है वह नीचे दिया जाता है इससे पाठकों को ज्ञात होगा कि लौकिक संस्कृत में में मेध शब्द **बुद्धि, आधार तथा मारने** के अर्थों में प्रयुक्त दर्शाया है। जिस समय वेद और प्राचीन ऋषिकृत ग्रन्थों का अभ्यास देशसे जातारहा उस समय मालूम होता है कि अश्व मेध के अर्थ लोगों ने इस देशमें बिगाडकर वह लीला चलादी जिस का वर्णन समुद्रगुप्त के सातवें प्रकरण मे कुछ आया है। अश्व शब्दके अर्थ राष्ट्र अग्नि बिजली प्राचीन ग्रंथोंमे दिए हुए हैं और उक्त संस्कृत कोषमे अश्व के अर्थ इस प्रकार हैं।

अश्व। **अश्नुते व्यप्नोति मार्गम्** अर्थात् जो मार्ग को जो व्याप्त करे उसका नाम अश्व है यह सबसे प्रधान और मूल धात्विक अर्थ कोषकार ने दिया है इसको भुलाकर केवल घोडेके लौकिक अर्थ लेकर उसको मारने का विधान करना संस्कृत और वैदिक साहित्य से विहीन पंडितों का ही काम हो सकता है। पुराने समय में जैसा कि शतपथ ब्राह्मण में लिखा है अश्व राष्ट्र अर्थ में भी उपयुक्त होता था और अश्वमेध के अर्थ निस्संदेह राजसुप्रबन्ध के थे जैसा कि ऊपर प्रमाण देचुके है। कोषकार मेध संबंधी लिखते है **बधे मेधायांच।** अर्थात् मारने और वृद्धि संबंधी कार्य के हैं फिर इसी कोष में गोमेध संबंधी लिखते हुए कोषकार मेधके अर्थ आधार के भी बतलाते है और गोयज्ञ गाउद्दिश्य यज्ञः अर्थात् गौओके निमित्त किये जाने वाले यज्ञ के करते है और लिखते हैं "श्रीकृष्णेन गोपानां हितार्थं वृन्दावेन प्रवर्तिते गोवर्द्धन गिरि यज्ञ सहिते गवां महोत्सव कारके। व्यापार भेदे।" इससे पाया गया कि गोमेध के अर्थ गो हितार्थ कार्य्य के हैं और इसी प्रकार अश्वमेध के अर्थ घोड़े के हितार्थ कार्य्य के होसकते हैं आजकल जो गोमंडी और घोडा मंडी मेले भरे जाते हैं यह व्यवहार परक गोमेध और अश्वमेध है और वैदिककालमें जो राज वृद्धिके लिये कार्य्य किएजाते थे जैसा कि शतपथ ब्राम्हण मे लिखा है वह अश्वमेध कहलाते थे। अब जब कि कोलब्रुक तथा मैक्समूलर आदि विदेशी पंडित भी उक्त बातों को जो वैदिक कालकी हैं मानने लगे हैं तो आशा है कि अब सबलोग इस बातको स्वीकार करेंगे कि वेदों में घोडे के मारने का नाम अश्वमेध नहीं है।

विदित रहे कि यज्ञ शब्दके अर्थ संगति करण देवपूजा और दान प्राचीन महर्षिगण तथा वैय्याकरणाचार्य करते आए हैं और इसके किसी अर्थ में भी हिंसाकी गंध तक भी नहीं इस लिए इसके विपरीत अश्वमेधादि यज्ञोंमें हिंसाकी कल्पना करना भ्रान्ति जनक है। यजुर्वेद जो यज्ञपरक है उसके पहिले ही मंत्र में यह शब्द है पशून पाहि अर्थात् गाय भैंस, घोडा बकरी इत्यादि सर्व पशु संज्ञक प्राणियोंकी रक्षा करो तो फिर भला इन शास्त्रोंमें हिंसा का विधान कैसे हो सकता है।

इवोल्युशन थ्यूरी (उत्क्रान्तिवाद) कोही सब बातों की आधार शिला मानने वाले हमारे पाश्चात्य पंडित हमारे शास्त्रोंके अनेक गूढ़ तत्वों के रहस्य न समझ उन में असभ्यता अथवा जंगलीपन होना स्वाभाविक समझते हैं इस उत्क्रान्ति वादकी यथार्थ आलोचना श्रीयुत राज्यरत्न व्याख्यानवाचस्पति पं. आत्माराम जी एज्युकेशनल इनस्पेक्टर बडोदा ने शास्त्रीय प्रमाणों प्रबल युक्तियों और स्वयं युरोप के भारी विज्ञान वेत्ताओं के प्रमाणों द्वारा करते हुए सृष्टिविज्ञान* नामी पुस्तकमें दर्शा दिया है कि मनुष्य जिस प्रकार पूर्ण उन्नति भूत काल में करसका है वैसी अब कर रहा है और आगे को भी करता रहेगा। डारविनादि विद्वानोंका सिद्धांत कि पहिले मनुष्य जरूर जंगली अवस्था में था पीछे क्रमशः उन्नत हुवा इसका उत्तम प्रकारसे खण्डन इस पुस्तक में जिज्ञासुओं को मिलेगा।

प्रस्तुत पुस्तक के पाठ से निम्नलिखित बातें इतिहास प्रेमी जान सकेगें।

१ महाभारत काल के बाद भारतवर्ष में छोटे छोटे अनेक राज्य स्थापित हो गये। यह राजे प्रायः एक दूसरे से लड़ने में अपना समय बिताते थे। इस समय चीन अफगानिस्थान, मध्यएशिया रोम ग्रीस (यवन) एबीसीनिया इजिप्त इत्यादि प्रदेशों के राजा भी भारत में लड़ाइयां करने आतेथे और कभी कभी अपने सिक्के भी चलवाते थे।

२ इस समय वैदिक हिन्दु बौद्ध और जैनियों के प्रतिमा पूजनसे प्रभावित हो उनके समान अपने मन्दिर तथा मूर्तियां स्थापित करने लग पड़े थे।

---

* सृष्टि विज्ञान मूल्य २। मिलनेका पता जयदेव ब्रदर्स बड़ोदा.

३ विदेशी लोगोंने सिन्धु नदी पर से भारतवासियों को हिन्दु नाम दिया। ग्रीक लोक सिन्धु को इन्डिस कहने लगे और आसपासके वसने वालें को इंडोई कहते थे जिससे आजकल का इन्डिया नाम उत्पन्न हुवा। चीनी लोग हमको युआन-टु अथवा यिन-टु व शिनटु कहेते थे शायद इसी प्रकार हिन्दु शब्दका जन्म हुवा हो।

४ भारत के राजे अपने विवाह संबंध मध्य एशिया के राज्यों तथा यवनो ग्रीक आदिसे बिना संकोच करते थे, स्वयं समुद्रगुप्त की माता लिच्छवि वंश की थी अब यह लिच्छवि वंश काम्बोज और ईरान के (पर्शिया) के बीच प्रदेशों का था इस प्रकार अनेक ऐसे संबंध हमें दृष्टिगोचर होंगे।

५ स्त्रियों का आदर जन समाज अथवा राजगृहों में अधिक होगा कारण कि उस समय के सिक्कों पर उन्हें भी स्थान मिलता है।

६ राज्यों के स्थापित तथा नष्ट होने में स्थान स्थान पर स्त्रियों के प्रभाव का उल्लेख आता है इससे यह सिद्ध है कि उस समय को भारत की नारियां केवल 'परदे की बीबीयां नथी' परंतु राजकाजमें अपने संबंधियों के साथ रस लेती थीं।

७ उस समय के राजा लोग सिक्के ढलवाते थे। चान्दी सोना पीतल और ताम्बा इन सब धातुओं का सिक्कों में उपयोग किया जाता था सिक्के प्रायः गोल चौरस होते थे।

८ विजय स्तूप कीर्ति स्तम्भ तथा मठ आदि का उस समय के राजाओं को भारी शौक था।

९ अपने कवियों अथवा पंडितों द्वारा वह शिलालेख अथवा ताम्रपत्र लिखवा अपनी कीर्ति चिरस्थायी करते थे।

१० भारत से बाहर के देशों में जैसे चीन कम्बोज ईरान मिश्र आदि वह अपने आदमी भेजते थे।

११ समुद्र तथा स्थलद्वारा भारत का व्यापार दूर दूर देशों से होता था, समुद्र यात्रा निषिद्ध नहीं थी।

१२ भारतीय राजे दक्षिण में सिंहलद्वीप तथा जावा सुमात्रा से भी व्यवहार रखते थे। सिंहल द्वीप के राजा मेघवर्ण ने समुद्रगुप्तको सोनेकी मोहरें भेट कर एक भारत में मठ बनावाने की अनुमति ली थी

१३ आजकलका जिस तरह अंग्रेजी जातिका चिह्न सिंह Lion है जर्मनी का उकाब Eagle रशिया का रीछ Bear इसी प्रकार उस समय के भी बहादुर पशु पक्षियों पर से अपनी उपाधियां बनाते थे कोई अपने आपको व्याघ्रराज कोई हस्तिवर्मन इस प्रकार अनेक उपाधियां धारण करते थे इसी समयें हम नागवंशी राजाओं का वर्णन पाते हैं यह नागवंशी कोई नाग (सर्प) के वंशज नहीं थे परन्तु इन्होंने नागही अपना जातिसूचक शब्द रखा होगा इन नामोंसे बहककर इन्हें सांप प्राणी के वंशज बतलाना हमारे इतिहास के ज्ञानके तथा बुद्धि के विरुद्ध होगा।

१४ इसी प्रकार सार्वभौम सत्ता स्थापित करने वाले को देवपुत्र की बहुमान सूचक उपाधि दी जाती थी, यहां देवपुत्र का अर्थ कोई आकाशी अथवा कल्पित देवका पुत्र नहीं था।

१६ पंजाब के उत्तर के राजे अपने नाम के आगे शाही अथवा शाहानु शाही उपाधियां लगाते थे यह बहुमान सूचक थी शायद कभी इसी से शहेनशांह शब्द निकला हो।

१६ इस समय चारों वर्णोंमें अथवा बौद्ध तथा हिंदु आर्य पुरुषोंमें वैमनस्य वा ऊंच नीच का ख्याल नहीं किया जाता था शूद्र तिरस्कार की दृष्टि से नहीं देखे जाते थे परंतु शूद्रामाताओं के पुत्र राज गद्दी की योग्यता होने पर प्राप्त करते थे।

१७ भारत के अनेक उपजातियों की उत्पत्ति तथा छोटे छोटे राज्यों की स्थापना किस प्रकार हुइ वह पुस्तक के पढने से स्पष्ट हो जायगा।

श्रीमंत सयाजीराव महाराजा साहेब बडोदा सर्व विद्याओंके कितने प्रेमी और प्रचारक हैं यह कथन से बाहर है तब कि इच्छा कि विद्या प्रचार

द्वारा ही देशका अभ्युदय हो सकता है कार्य्य रूप में परिणत करने के लिए जो भारी व्यय कराकर ऐसे ऐसे उत्तम ग्रंथ प्रकाशीत करा रहे हैं यह उनके विद्या प्रेमका ज्वलंत उदाहरण है।

इस ग्रंथके अनुवाद करने में पंडित **भवानन्द जी शुक्ल**ने अनुवादक महोदय को जो सहायता दी है उसके लिए धन्यवाद के पात्र हैं तथा उनका हिन्दी प्रेम सराहनीय है। अन्त में हम चाहते है कि हिंदी प्रेमी हमार इस कार्य को फलीभूत करने के लिए अधिकाधिक संख्या में इस माला के ग्राहक बन अपने हिंदीं प्रेमका परिचय देंगें।

बडोदा.
ता. ४-११-२२

विनीत
ए. ए. दूदानी
बी. ए. एल् एल बी.
प्रकाशक.

ओ३म्

समुद्र गुप्त

प्रथम प्रकरण

हमारा प्राचीन पितृदेश

हमारा पितृदेश (मातृभूमि) हिन्दुस्तान सहस्रों वर्ष पूर्व किस आकारका था, यह आपको क्या, मालूम है? भिन्न भिन्न प्रमाणों से यह ज्ञात हुवाहै कि हजारों वर्ष पहिले हिन्दुस्थान का आज का सा आकार नथा। अतएव आजकल हिन्दुस्तान दक्षिण आफ्रिका-खण्ड और आस्ट्रेलिया के (मध्य) बीचमें महासागर आगया है। पहिले उस स्थानपर जलके स्थान पर भूमिथी, एवं यह तीनों खण्ड एक दूसरे से जुडे हुए थे। कुछ काल बीतने पर वह बीचकी जमीन समुद्र के नीचे दब गई। इस तरह यहतीनों देश एक दूसरे से पृथक् होगये। सुतरां हिंदुस्थानको वर्तमान का यह स्वरूप प्राप्त हुवा।

जितना महत्व हिंदुस्थान के प्राचीन इतिहास का है उतना महत्व पृथ्वीतलके और किसी देशके इतिहास का नहीं है, इसका कारण यह है कि हिन्दुस्थान देश प्राचीन कालसे दुनियां के सर्व सभ्यता प्राप्त राष्ट्रों का मुखिया माना जाता था एवं उनके साथ संबन्ध भी रखता आया है। बेबिलोनिया, यवद्वीप (जावा), इटली,

मिश्र, ग्रीस, चीन, अरबस्तान, अमरीका आदि नाना देशों के साथ हमारा पितृदेश व्यापारिक संबन्धसे संबद्धथा। हिंदुस्थान की शस्य श्यामला फल पुष्पवती भूमि ने नाना देशों के लोगों का मन आकर्षित किया है। इस देश के मूल निवासी कौन थे, एवं वह कहां से आये थे इस विषयमें आजतक कोई सुदृढ निर्णय नहीं हो सका है परन्तु बहुत से लोगों का यह मत है कि हमारे देश के आदि निवासी सिद्दी (अनार्य) थे। उनके पश्चात् द्रविड लोग आये। ये भी इसी देश के रहने वाले थे ऐसा भी कोई मानते हैं। कतिपय ऐसा भी कहते हैं कि वे विदेशी हमारे देश के वायव्य तथा ईशान कोण की राह से वहां घुस आये। इनके पश्चात् चीन देश के पीली चमडी के मंगोलियन लोग कांबोज (तिब्बत) की राहसे तथा ईशान कोन के पहाड़ की राहसे इस देश में उतरे। इनके पश्चात् सुप्रसिद्ध आर्यलोग आये। उनके पश्चात् ग्रीक, चीन निवासी युएची लोग, शक, पल्लव व हूण लोग आये। फिर मुसलमान, पोर्चुगीझ, वलन्दा, फ्रैंच तथा अंग्रेज लोग हमारे पितृ देश में आकर रहने लगे। इस प्रकार नाना देशों के विविध जातीय लोगोंको हमारा देश खींच लाया है और यही इस के महत्वका ज्वलन्त चिन्ह है।

जब से आर्य लोग यहां आये तब से इस देश की स्थिति में बड़े बड़े परिवर्तन हुऐ। यह लोग शूर एवं चतुर थे। इस से यहां के अनार्य बेबस होगये तथा जंगल व पर्वतों की तरफ

चले गये। जो वहीं रहे उन पर आर्य लोगों की भाषा धर्म तथा उनके आचार व्यवहार का अच्छा प्रभाव पड़ा। इन्हीं आर्यों से यूरोप के मध्य एशिया के एवं पश्चिम एशिया के बड़े बड़े राष्ट्र उत्पन्न हुए। आर्य लोग वास्तव में उत्तरीय ध्रुव के समीप के प्रदेश में रहतेथे, ऐसा किसीका कथन है। कतिपय विद्वान अंग्रेजों का यह कथन है कि, वे मूल मध्य एशिया के कास्पियन समुद्रके आसपास अथवा कॉकेशस पर्वत के समीप रहते थे कतिपय विद्वान अनेक अनुमानों के द्वारा ऐसा कथन करते हैं कि वे मूलतः रूषिया देश के उरल पर्वत के दक्षिण भागसे लेकर दक्षिण के उत्तरीय भागतक निवास करते होंगे। कतिपय शोधकोंका मत हैकि आर्यों की उत्पत्ति पंजाबके सरस्वती नदीके प्रदेशसे हुई है एवं वहांसे वे उत्तरीय ध्रुव तक फैलेथे।

इस प्रकार आर्य योरोपखण्ड तथा एशिया खण्ड में बसेथे। ऑक्सस और जग्झार्टिसस नामक नदियों की तरफ होकर खोकन्द एवम् बदकशान नाम के पर्वतों तक जा पहुंचे थे। वहां से उनमें से बहुत से ईरान देश की ओर गये। और बचे हुवे लोग हिन्दुकुश पर्वत को लांघ पूर्व अफगानिस्तान देशमें जा बसे। वहां से वे पंजाब की ओर झुके। पंजाब की बड़ी बड़ी नदियां उन्होंने देखीं। वे उनको सिन्धु इसनाम से पुकारने लगे। ईरान के लोग इन नदियों को हेन्दू ऐसा कहने लगे। इसीसे इस देशका नाम हिन्द हुवा, ऐसी बहुतों की राय है। ईरानियों के बाद यहां ग्रीक

लोग आये वे इन नदियों को इन्डिस कहने लगे। और उस प्रान्त के निवासिओं को 'इंडोइ' के नाम से पुकारने लगे। इस परसे ही हमारे देश का 'इंडिया' यह अंग्रेजी नाम पड़ा। ऐसा किन्हीं का कथन है। ईसा के पहिले दूसरी शताब्दि के अन्तिम समयमें हेन वंश के वुटी महाराज के समय में प्रथम चीन के साथ हमारा ऐतिहासिक संबन्ध स्थापन हुवा तब चीन के लोगोंने हिन्दको 'युआन–टु' अथवा 'यिन–टु' अर्थात् हिन्दु व 'शिन–टु' अर्थात् सिन्धु कहाथा। संक्षेप से यह कि हिंदुस्तान में रहने वाले आर्य लोगों का सिन्धु वा हिन्दु नाम हिन्द के बाहर रहने वाले लोगोंनें रखा होगा।

आर्यलोग किस प्रकार के थे उन की चाल ढाल (रस्मो-रिवाज) कैसी थी। उन की धार्मिक राजकीय एवं सामाजिक स्थिति कैसी थी। इस विषय में वेदग्रन्थों में से बहुतसी बातें ज्ञात हो सकती हैं। वेद भी भिन्न भिन्न समय में रचे गये थे। कतिपय विद्वान् लोगों का मत है कि वे ईसा के दो हजार वर्ष पूर्व के हैं। तब दूसरों की राय में ईसा के दश हजार वर्ष से भी पहिले लिखे गये होंगे। आरंभ में आर्य लोग बहुत पराक्रमी एवं शूर थे। उन्हों ने दस्यु और राक्षस लोगों को जीत लिया था, (इनके सिवाय पिशाच यक्ष नाग, पुंड्र पुलिन्द नीच सांबर अंध्र आदि अनार्य जातियों कोभी) वे कभी कभी आपस मे लड़ाई करते थे। उस समय की उनकी संस्कृति ऐहिक प्रकार

कीभी थी । अपने लिये अन्न धन शारीरिक संपत्ति गौ आदि प्राप्त करने के लिये वे लोग प्रार्थना किया करते । ऐसा उन के मन्त्रों के वाचन से ज्ञात होता है । वे लोग सोम रस पीते थे । नाचने गाने काभी रिवाज था । आरंभ में आर्य और अनार्य इतनाही वर्ण भेद था । उस समय कोई भी लिखना नहीं जानता था । गुरुलोग शिष्यों को वेद मंत्र कण्ठ करवाते । इस प्रकार परंपरा के द्वारा यह मन्त्र बने रहते । मन्त्र रचने वाले ब्राह्मण कहलाते । युद्ध करने वाले क्षत्रिय, व्यापार करने वाले वैश्य तथा नीच जाति के लोग शूद्र कहे जाते थे । परन्तु ऐसा जाति भेद पुरुषसूक्त के मन्त्रों तक स्थापन न किया गया था । उस समय मन्दिर न थे । लोग अपने अपने आश्रमों में ही पूजा विधि करलेते । कुल में पराक्रमशाली राजा बनाया जाता । उसके पास मन्त्र पाठ करने वाले एवं यज्ञयाग करने वाले ब्राह्मण लोग रहते थे। पर तब तक भिन्न भिन्न ज्ञातियों का निर्माण न हुवा था । कुछ काल बीतने पर आर्य लोग गंगा के समीप के प्रदेशों में रहने लगे । इस समय इनकी संस्कृति तथा धर्म में बहुत कुछ उत्क्रान्ति हुई । उन के आरंभ कालका बल घटता गया । ऐशो आराम बढ़ गये । एवं उन के शौर्य का ह्रास होने लगा । तब उस स्थान पर साहित्य तथा धार्मिक विचार बढ़ने लगे । मन्त्र तन्त्र का महत्व बढ़ गया । प्रारम्भ में रचे हुए मन्त्रों का रहस्य (अर्थ) समझना भी कठिन हो गया । एवं मन्त्रों कीभी वृद्धि होने लगी । तब उन के कण्ठस्थ

करने का कार्य क्षेत्र भी बढ़ गया। अतः साधारण लोगों की शक्ति इसे गवारा न कर सकी। तब स्वतन्त्र ब्राह्मण वर्ग की स्थापना की गई। इस तरह क्षत्रिय और ब्राह्मणों का जाति भेद तीव्र हुवा। वेदों की व्यवस्था की गई। तब ऋग्वेद सामवेद यजुर्वेद तथा अथर्ववेद इस प्रकार चार वेद बने।

इस इसम इन्द्रप्रस्थ (देहली) के पास कुरु देश था। कांबोज के आसपास पांचाल राज्य था। गंगा व गंडकी के मध्य कोसलका प्रान्त था। तीर भुक्ति (तिरहुत) के समीप विदेह लोग रहते थे। काशी क्षेत्र के पास काशी के लोग रहते थे। तदनन्तर आर्य लोगोंने शीघ्रतासे अपनी उन्नति की। वे बंगाल में एवं दक्षिण विदर्भ (विहार) प्रान्त में गये। चन्द्रगुप्तने मौर्योंका साम्राज्य स्थापित किया। पंजाब से बिहार तक सम्पूर्ण हिन्दुस्थान में उन्होंने अपना वर्चस्व प्रस्थापित किया। दक्षिणमें आन्ध्रों का राज्य संस्थापित हुवा। चोल चेरा व पांड्य राज्यों की भी संस्थापना हुई। एवं कांची में सुप्रसिद्ध शारदा पीठ की स्थापना हुई। केवल ब्राह्मण और आरण्यक आदि तांत्रिक ग्रन्थों के सिवाय सूत्र बनाये गये। यास्कने निरुक्त का पुस्तक लिखा। पाणिनि ने इसी समय में अपना सुप्रसिद्ध व्याकरण का ग्रन्थ बनाया। सांख्य तथा अन्यान्य दर्शन ग्रन्थ भी रचे गये। तथा भगवान् गौतमबुद्ध ने भी बौद्ध धर्म का प्रचार किया। मौर्य साम्राज्य के राजाओंने और उनके पश्चात् के अन्यवंशीय राजा

ओंने हिन्दुस्थान में राज्य करते हुए कैसे कैसे पराक्रम किये थे। इस को देखने के पूर्व अपने पितृ देश के प्राचीन इतिहास के जानने के क्या क्या साधन अपने पास हैं। इस विषय पर हम कुछ विचार करेंगे।

दूसर प्रकरण

हिंदुस्थानके प्राचीन इतिहास के साधन

कभी कभी आपके मनमें यह विचार भी आता होगा कि हिन्दुस्थान यह समूचा एक देश होने पर भी खण्ड क्यों कहलाता है। खण्ड में तो अनेक देश हुवा करते हैं। प्रत्येक देशमें अनेक जाति के लोग रहते हैं एवं प्रत्येक की भाषा भिन्न भिन्न। इसी प्रकार हिन्दुस्थान में भी भिन्न भिन्न जाति के रहनेवालों की स्व स्व मातृभाषा होनेसे ही नाना भाषायें दीख पड़ती हैं इसी लिये हमारे प्राचीन पूर्वजोंने यूरोप खण्ड की न्याई इस देश को भी खण्ड माना हो तो कुछ आश्चर्य नहीं। इस के कारण भी सहजतया अनुमान किये जा सकते हैं, हिंदुस्थानके तीनों तरफ समुद्र है। पृथ्वीका सबसे ऊंचा पर्वत हिमालय उत्तर की दिशामें खड़ा है। वायव्यकोनेमें हिमालयसे

अरबी समुद्र तक सिन्धु नदी बह रही है। एवं इस नदी की दूसरी ओर बड़ी बड़ी पर्वत मालायें हैं। ऐशान्य कोन पर ब्रह्मपुत्र नद परिवाहित हो रहा है। पश्चिम और दक्षिण में अरबी समुद्र व बंगाल की खाड़ी है। इसी प्रकार भारतवर्ष की चहुं ओर दूसरे देशों से पृथक् करनेवाले बड़े बड़े प्राकृतिक चिह्न उपस्थित हैं। मनुष्यों में भी अपूर्व साम्य दृष्टिगोचर होता है। काश्मीर के हिन्दु जिन देवताओं की पूजा करते हैं उन्हीं देवताओं की कन्या कुमारी के भूशिर के पास रहनेवाले भी अर्चा कर रहे हैं। पश्चिम कोन स्थित द्वारिका में जिस कृष्ण भगवान् की लोग भक्ति कर रहे हैं उसी की सुदूरस्थित बंगाल में जगन्नाथपुरी के लोग उपासना कर रहे हैं। जिस प्रेम से रामायण और महाभारत की कथाओंको नेपाल व हिमालय के लोग श्रवण करते हैं उसी प्रेमरससे काठियावाड गुजरात महीसुर उत्कल अथच ओद्र अयोध्या महाराष्ट्र आदि प्रान्तों के लोक भी श्रवण कर रहे हैं। गोवध कातिरस्कार सम्पूर्ण देश में एक प्रकारका ही प्रतीत होता है। जाति निर्बन्ध प्रायः सभी जगह एकही प्रकारका है। स्त्रियों के साथ अच्छा वा बुरा वर्ताव तथा लड़कियों का विवाह का समय लगभग सब स्थानपर एक प्रकारका है। प्रायः सब भाषायों की आदि जननी संस्कृत भाषाही है। जिस देश का धर्म एवं सामाजिक आचार तथा भाषा का साम्य प्रायः समान है उस देश को वह बहुत विस्तार वाला है उसके प्रान्त प्रान्त के जलवायु विभिन्न

हैं ऐसे कारणाभास बतलाकर एक देश कहने में संकोच करना हमारी समझ से नितान्त अवास्तविक है संक्षेप में इस देशको भरत खण्ड कहना युक्तिसंगतही है।

पृथ्वीतलके बहुत से देशोंका इतिहास तत्तद्देशीय लोगोंने लिखाहै परन्तु हमारे देशके लोगोंने भारतभूमिके इतिहास लेखन में सदा अनुत्साह ही बतलायाहै। जिसप्रकार नाना विषयों पर यहां का साहित्य दूसरे देशों के साहित्यसे बढा चढाहै उसीप्रकार अर्वाचीन प्रकार से लिखेहुए दूसरे देशोंके इतिहास के सामने न्यून एवं घटिया है। काश्मीर के कल्हण कवि का ईसा के ११४८ ११४९ सदी में लिखा हुवा राजतरंगिणी नामक ग्रन्थ छोडकर ऐतिहासिक विषयका और कोई ग्रन्थ विश्वास के लायक नहीं दीख-पड़ता। रामायण और महाभारत सम्पूर्णतया इतिहास नहीं कहे जासकते क्योंकि उसमें कल्पनाका भाग बहुतसाहै। इसप्रकार आलोचना करने पर हमारे पितृदेशका इतिहास निम्नलिखित चार साधनों के आधारपर ग्रथित किया जा सकताहै।

(१) हमारे प्राचीन साहित्य में लौकिक परंपरा से आयी हुई कथाओं द्वारा

(२) हमारे देश पर परदेशीय मुसाफिर और इतिहास कारोंने लिखी हुई टिप्पणियां

(३) ताम्रपट शिलालेख सिक्के दानपत्र आदिसे

(४) हमारे देश के लेखक तथा विदेशीय ग्रन्थकारोंके लिखे हुए कुछ ऐतिहासिक (लेख) ग्रन्थ

जैन लोगों के धर्मग्रन्थ, बौद्धों के जातक, दीपवंश, महावंश, पालीभाषाके ग्रन्थ, सिंहलद्वीपमें ग्रन्थ, इनमें कुछ कुछ वृत्तान्त मिलताहै। परन्तु इन सब से अधिक परिचय तो हमारे अठारह पुराण देरहेहैं। उनमें भविष्य रूप से लिखा गयाहै। अठारह पुराणोमें वायु मत्स्य विष्णु ब्रह्म एवं भागवत में राजाओं की वंशावलियां दी हैं। मत्स्यपुराण सब से पुराना एवं प्रामाणिक भी है।

परदेशवासियों का सबसे पहिला टीपण पर्सीपॉलिस बेहिस्तुन, नक्ष–इ–रुस्तन के शिलालेखों में पाया जाता है। ये शिलालेख ईरानके राजा हीस्टॅस्पस के पुत्र डेरिअस ने ईसा से ४८६ पूर्व लिखाहै। पश्चात् हेरोडोटस ने इस शिलालेख को दृढता करनेवाला एक लेख लिखाहै। ईसा से ४०१ वर्ष पहिले आर्टेग्-झर्क्सीस नेमनके वैद्यराज नीडास के टेशियस के बचे खुचे लेखोंमेंभी भारतवर्ष का (त्रुटित) अधूरा वर्णन मिलताहै।

जिस समय हिन्दुस्थान पर चढ़ाई की थी उसके बीस वर्ष उपरान्त ग्रीस के एलचीयों ने यहां आकर मौर्य राजाओं से वृत्तान्त प्राप्त किया था। वह ग्रीस के तथा रोम के बहुत से ग्रन्थों में पायी जाती है। ईसाके ३२६ वर्ष पूर्व एवं ईसाके ९० वें वे वर्ष में उत्पन्न हुए एरियन नामक ग्रीस निवासी लेखक ने लेगॉस के पुत्र टॉलेमी तथा सिकन्दर के सरदारों के चरित्रों से यह ज्ञात होता है

कि ये लेख हिन्दुस्थान की तत्कालीन परिस्थिति के दर्शक होने से अत्युपयुक्त हैं। इस के सिवाय सेल्यूकस राजाका वकील मेगॉस्थनीस चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में था। उस ने भी बहुतसा ब्योरेवार वर्णन लिखा है। ईसाके २१५–२१८ के पहिले एथीनियम के फिलॉस्टेस्टास ने महाराणी जुलिया डॉम्ना की इच्छानुसार त्याना के एपोलोनियस के मानमें लिखे हुए पुस्तक में भी हिन्दुस्थान विषयक कुछ लेख दीख पड़ते हैं। तथापि उसपर सब आधार नहीं रखा जा सकता।

ईसाके १०० (शत) वर्ष पूर्व चीनी इतिहासकार सुमाचिया के लिखे हुए इतिहास में भारत विषयक उपयुक्त परिचय दिया है। एवं हिंदुस्थानको पवित्र भूमि मानने वाले अनेक बौद्ध धर्मानुयायी चीनी मुसाफिर सैंकड़ो वर्षों से हिंदुस्थान की यात्रा करते थे। इनमें सबसे पहिला फाहिएन ईसाके संवत् ३९९ में चीन से निकल कर हिन्दुस्थानमें आयाथा। यहां वह १५ वर्ष रहा था। उसके लिखे हुए पुस्तकमें चन्द्रगुप्त–विक्रमादित्य के समय से सामाजिक तथा राजकीय स्थिति का बहुतसा मार्मिक वर्णन दिया है लेकिन यात्रियों का शिरोमणि भूत हुएनत्संग विशेषतः गौरव के लायक है। वह ईसाके ६२९ से ६४५ वर्ष तक भारत वर्ष में रहा था। वह चीनसे निकल तार्तार देशमें आया। रास्तेमें अनेक नगर और देशों को देखता हुवा तासखण्ड नामक नगर में आया। वहां से जगझार्टीस नदी को लांघकर वह समरकन्द में

आया वहां हिंदुकुश पर्वतको लांघ वह कपिश नगर में आया। वहां का राजा क्षत्रिय था। वहां पर सौ मठथे उसमें छः हजार यति रहते थे। नगर के पासही अशोक के प्रथम स्तूप को उसने देखा। वहां से चल वह उत्तर हिन्द में उतरा सबसे पहिले वह लंपा नामक नगर में दाखिल हुवा। इस शहर के उत्तर म्लेच्छ लोग रहते थे।

वहां से वह नगरहार (जलालाबाद) नामक नगर में आया। इस नगरके नैर्ऋत्य दिशामें एक गुफा थी उसमें बुद्ध भगवान ने आपनी छाया रखी थी प्राचीन समय में यह छाया बुद्धकी जैसी प्रतीत होती थी लेकिन ह्युएनत्संग को ऐसा कुछ दीखानहीं। फिरवह वहांसे तक्षशिला मथुरा कान्यकुब्ज प्रयाग आदि तीर्थों को देखते देखते काशीजीमें आया वहां बौद्धों के अपेक्षा ब्राह्मण अधिक दीखपडे। दस हजार शिवभक्त थे। उसने सौपाद उंचाईकी महेश्वरकी पीतलकी प्रतिमा देखी। रास्तेमें बहुतसे नग्नावस्थामें चलते फिरते दीखपड़े। और बहुतसे विभूति रमाये घूमतेथे। वहां से वह उत्तरकी ओर चला। वहांपर उसने वैशाली और पाटलिपुत्रका दर्शन किया। वहांसे चलकर गयाजीमें पहुंचा। तोभी सबसे अधिक समयतक वह नालन्दा में ही रहा। एवं वहां पांचवर्षतक रहा। वहां रहकर हेतुविद्या, अभिधर्मशास्त्र, योगशास्त्र, शब्दविद्या न्यायानुसारशास्त्र आदिका अभ्यास किया, वहां पर १० हजार यति रहते थे। वहांसे निकलकर आसाम उत्कल अंध्र द्रविड आदि

प्रांतोंको देखकर कोंकण महाराष्ट्र गुजरात कच्छ काठियावाड आदि प्रान्तों में जाकर हिन्दुकुश पर्वत को लांघ वह अपने देशकी ओर चलागया। इस से उसके लिखेहुए लेखों का महत्व समझ में आसकताहै। सुप्रसिद्ध गणितज्ञ एवं ज्योतिषी मुसलमान आल्ब-रूनिभी (इ. स. ९७०-१०३९) महमद गिझनी के साथ हिन्दुस्तानमें आया था। उसने इ. स. १०३० में लिखा हुवा तहकीक इ हिन्द नामका एक पुस्तक है। उसमें हिन्दुओं के आचार विचार विज्ञान एवं साहित्य विषयक बहु मूल्य ज्ञान भरा हुवा है। इसके पश्चात् दक्षिण हिन्दुस्तान का प्रवास करनेवाला वेनिस का मार्कोपोलो भी भारतवर्ष के विषय में बहुत कुछ लिख गया है।

अब ताम्रपत्र एवं शिलालेखों के विषयमें विचार करेंगे। हमारे पितृदेशमें नानास्थानों पर पर्वतों की गुहाओं में जंगल के पत्थरों पर, मन्दिरों की दीवारों पर, खंभोंमें इसप्रकार नाना स्थानों पर लेख खुदवाये हुवेहैं। एवं अनेक स्थानों में ताम्रपत्रभी प्राप्त होतेहैं उनपर दान लेख अंकित किये गयेहैं। दान दाताओंका तथा उनके पूर्वजोंके वर्ष नाम आदि उसपर लिखे रहते हैं। प्राचीन इतिहासके विषयमें राजा अशोक के शासन पत्रोंसे बहुत कुछ पता चलता है। अजमेर व धारमें प्राप्त हुई शिलाओंमें लेख अंकितहैं उनसेभी बहुत कुछ पतालगाहै। दक्षिण हिन्दुस्थानमें हजारों शिला-लेख और ताम्रपत्र प्राप्त हुएहैं एवं बहुतसे अभी मिलेभी नहीं हैं।

उत्तर हिन्द का पुरानासे पुराना लेख ईसाके ४५० वर्ष पहिलेकाहै वह लेखांकित घट पिप्रावा गांवमेंहैं। यह मानाजाताथा कि बुद्धभगवान् की हड्डियों के भर रखने के लिये यह घडा बनाया गयाथा। पर अब यह बात झूठ साबित हुई है। ईसाके २५० वर्ष पूर्व अर्थात् अशोक से भी पहिलेका निश्चित लेखभी आजतक कोई कहीं भी नहीं दीखपडा। इसके सिवाय पुराने सिक्कोंसे हिन्दुस्तान का इतिहास अच्छी तरह गूंथा जासकताहै। कलकत्ते के अजायबघर में २०००० से भी अधिक संख्याके सिक्के उपस्थितहैं ये सिक्के सोना चांदी तांबा व मिश्रित धातुओं के बनाये हुवेहैं। इस प्रकार के हजारों सिक्के हिन्द के अज्ञात कोनोंमें छिपे हुवे पडेहैं जिन राजाओं ने उन्हें मुद्रित करायाहै उनके नाम तथा जिस साल में वे डाले गयेहैं वे साल उनसिक्कोंपर दीखपडताहै।

अब पुराने साहित्य का परीक्षण शेषरहा। वास्तवमें इस प्रकारका साहित्य बहुतन्यून प्रसिद्ध हुवाहै। काश्मीर की राजतरंगिणी तथा नेपाल व आसाम की स्थानीय हकीकतों का इतिहास तथा संस्कृत और प्राकृत भाषामें लिखे हुई कुछ पुस्तकें वैसेही तामिल भाषा में लिखी गई थोडी कविता बस इतने ही साधन हमारे आधार हैं। ६२० इस्वी में बाण कविने स्थानेश्वर और कान्यकुब्ज के राजा हर्ष की स्तुति करनेवाला हर्ष चरित काव्य लिखाथा। वह अच्छी प्रकारसे तत्कालीन परिचय करवाताहै। एवं १२ वीं सदी में उत्पन्न हुए कवि बिल्हण ने ईस्वीसन् १०७६ से

ई. स. ११२६ तक के राजाओं की स्तुति करनेवाला ' विक्रमांक चरित ' लिखा है वहभी बडे कामकी चीज है। बंगाल के पालराजा ओं के बाबत में परिचय देनेवाला रामचरित्र काव्य भी बहुत उपयुक्त वस्तु है। इसी प्रकार तामिल काव्य में ईसाके पहिली दूसरी शताब्दि के दक्षिण के राजाओंके विषयकी जानकारीदी हुई है।

हिंदुस्थान का इतिहास व्यवस्था पूर्वक लिखने में बडा भारी विघ्न यह है कि इस देश में शक या वर्ष बतलाने की रीति भिन्न भिन्न प्रकार की है। अबतक बीस से भी अधिक शक पद्धतियों का वर्णन किया गया है। अबभी अनेक शक मिलेंगे इसमें कुछभी सन्देहनहीं। नाना प्रान्तों के भिन्न भिन्न राजालोग गद्दीपर बैठे तबसे अथवा उन्होंने दिग्विजय प्राप्तकिये तबसे उसउस प्रान्तमें वर्ष गणना करने का रिवाज प्रचलित दीख पडती है। परन्तु इस प्रकार एकत्रित हुए शकों के आधार पर प्रतिवर्ष बनती हुई घटनाओं को इकट्ठा कर हिंदुस्थानका एक सुन्दर इतिहास लिखा जा सकताहै। समकालीन ग्रीस के राजाओं का नाम ज्ञात होनेसे मौर्यवंशके राजाओं की वंशावलीका अब यथायोग्य निर्णय हो गयाहै। इसी प्रकार अंध्र राजाओं का व पश्चिम के राजाओं का संबध ज्ञात होनेसे ही अन्ध्रवंशका इतिहास संघटित हुवाहै। इसी प्रकार के साधनों के आधार पर हिंदुस्थान का इतिहास भी घडा गयाहै।

तीसरा प्रकरण

प्रारंभ के वंश

(इ. स. पूर्व ६०० से ३२० तक)

हमारे महाभारत में जिस युद्धका वर्णनहै वह युद्ध कब हुवाथा इस विषय में विद्वान लोगों के विविध मतहैं। कोई कहताहै ईसासे ३००० वर्ष पहिले। दूसरा कहताहै ईसासे १४०० वर्ष पहिले। परन्तु आजकल रा. ब. चिन्तामनराव वैद्यने ईसासे ३१०२ वर्ष पूर्व स्थिर किया है। इससमयसे लेकर ईसासे ६००, ७०० वर्ष पूर्व तकका कोई विश्वसनीय इतिहास प्राप्तनहीं हुवा। ऐसा प्रतीत होताहै कि उत्तर हिन्दमें इस समय १६ राजा थे। और पुरुष पुर (पेशावर) तथा रावलपिंडी (गांधार) से लेकर उज्जयिनी तक फैले हुएथे। उससमय इस देश के बहुत से भाग में बड़े बड़े जंगल थे। सबसे प्रथम कोसल का राज्य सुनाजाताहै। उसकी राजधानी हिमालय पर्वतकी उपत्यका में बहती हुई अचिरावती (राप्ती) नदी के ऊर्ध्वभाग पर बसा हुवा श्रावस्ती नामक नगरथा। फिर मगध देशके राज्य का उदय हवा, उसका प्रथम राजवंश शिशुनाक नामकथा, उसकी राजधानी गंगा के समीपका राजगृह (राजीर) नामका नगर था। इसवंश के मूल संस्थापक व उसके पश्चात के तीनराजाओंका विशेष वृत्तान्त नहीं मिलता।

उनमें से पांचवां राजा बिंबिसार उर्फ श्रेणिक था। उसने पूर्वका मगध और बंगालके मध्यका अंगदेश किंवा कामाश्रम अपने आधीन कियाथा; एवं कोसल तथा लिच्छविकी कुमारियों के साथ विवाह कर अपना महत्त्व बढाया था। उन्होंने २८ वर्षतक राज्य कियाथा उनकेही शासनमें जैन धर्म के संस्थापक वर्धमान महावीरस्वामी एवं बौद्धपंथके संस्थापक गौतम बुद्ध भगवान अपने अपने धर्मका उपदेश करतेथे। महावीरस्वामी अजातशत्रु के राज्य के आरंभ में ही स्वर्गवासी हुवे। वे बिंबिसार की रानी के संबन्धी थे। बुद्ध-भगवान ५८० वर्ष ईसा से पाहिले मरचुकेथे। उनके मरण के पूर्व कोसलदेश के राजा विरूढने उनकी जन्मभूमि कपिलवस्तु अपने आधीन करलीथी, एवं शक लोगोंकी जबरदस्त मारकाट कीथी, ऐसा कहते हैं।

बिंबिसार का पुत्र अजातशत्रु फिर गद्दीनशीन हुआ। उसने अपने पिता की हत्या कीथी ऐसा कहते हैं। फिर शीघ्रही उसकी उसके मामा कोसलके राजाके साथ युद्ध प्रारंभ हुवाथा। फिर कुछ वर्षोंमें कोसल देश नष्ट होकर मगध के राज्यमें मिल गयाथा। अजा-तशत्रुने लिच्छविका राज्यभी ले लियाथा। एवं पाटलिपुत्रके समीप एक किला बंधवाया था। फिर उसकी लडकीके लडके उदयने शोण नदीके किनारेपर सुप्रसिद्ध पाटलिपुत्र शहर बसाया था। शोण नदी और हिरण्यवाहा वा सुवर्णवाहा नदीभी कहतेहैं, पाटलिपुत्रको

कुसुमपुर वा पुष्पपुर भी कहतेहैं । इससमय उसको पटना नाम से पुकारते हैं ।

इस समय में ईरानका बादशाह हीस्तास्पीझ था । उसका बेटा डेरीयस, बिंबिसार एवं अजातशत्रुका समकालीन था, उस समय सिंधप्रान्त और पंजाबका थोडासा हिस्सा डेरीयस के अधिकारमें था उसमेंसे लगभग उसको एक करोडका वसूल मिलताथा, फिर सिकन्दर बादशाह की चढाई के समय इन दोनों प्रान्तोंपर हिन्दू राजाओं का आधिपत्यथा । अजातशत्रु के पश्चात उसका लडका दर्शक गद्दी परबैठा और उसके पश्चात उसका पुत्र उदय गद्दीपर बैठा । उदयके पश्चात नंदिवर्धन और महानंदी नामके दोराजा होकर शिशुनाक वंश का अन्त हो गयाथा । महानन्दी को किसी शूद्रस्त्रीसे महापद्म नामक लडका हुवाथा उसने गद्दी छीनलीथी, और नंदवंशका स्थापन हुवाथा ।

इन राजाओं का विश्वसनीय कोई वृत्तान्त नहीं मिलता । परन्तु पुराणों में ऐसा लिखाहै कि इस वंश में नवनन्द थे उनमें से केवल दो राजाओंने राज्य कियाथा, महापद्मने लगभग ३८ वर्षतक राज्य कियाथा । और उसके ८ लडकोंने लगभग १२ वर्षतक राज्य किया । लडकोंमें सबसे पहिला सुकल्प था । वस्तुतः तत्कालीन वृत्तान्तों से यही मालुम होता है कि यह वंश नीच जातिका था एवं उसने वारस राजाका वध करके सत्ता प्राप्त की थी । इसीसे

वे राजा लोगों को अप्रिय होगये थे। अन्तमें इस वंश के अन्तिम सम्राट को चन्द्रगुप्तमौर्य्यने गद्दी से उतारकर मारडालाथा जब से चंद्रगुप्त गद्दीपर बैठा तब से मौर्य्य वंशका प्रारंभ हुवाथा। किंच मुद्राराक्षस में इसी राज्यक्रान्तिका वर्णन किया गया है।

मौर्यवंश का पहला राजा चंद्रगुप्त था। वह मगधदेशके नंद-वंश काथा। उसकी माता मुरा नीच कुलकीथी। मगध देशके राजा महापद्म नन्दकी चद्रगुप्त पर प्रीति न होनेसे स्वदेशको छोड पंजाब की ओर जाने की उसको आवश्यकता प्रतीत हुई। वहां थोडेसे मनुष्यों को एकत्र कर पंजाब प्रान्त उसने अपने आधीन किया। वहांसे वह अपनी विजयी सेना लेकर मगधदेश के राजापर उसने चढाई की। एवं उसको पराजितकर उसको तथा उसके बहुत से अनुयायियों को जानसे मारकर उसने पाटलिपुत्रका सिंहासन हस्तगत करलिया। नन्दवंशका १० लाख पैदल उसके तीस हजार घुडस्वार नव हजार हाथी एवं अनेक रथ यह सैन्यबळ उसने अपने हस्तगत कर लिया। उसने नर्मदा नदीतक का संपूर्ण प्रदेश जीतलिया। एवं बंगाल के आखातसे लेकर अरबी समुद्र-तक का सम्पूर्ण प्रदेश उसके हाथ में आगया। इस प्रकार चंद्रगुप्तने शास्त्रीय सरहद्द का फैसला कर लियाथा। एवं वह सबसे पहिले सार्वभौम राजा कहलायाथा।

चन्द्रगुप्तके पश्चात उसका बेटा बिन्दुसार गद्दीपर बैठा। उसका दूसरा नाम अमित्रघात था। उसने पच्चीस वर्ष तक राज्य

किया। उसमें दक्षिणका कुछ भाग उसने अपने आधीन किया था ऐसा पतीत होता है। वह मर गया तब उसका बेटा अशोक सिंहासनपर विराजमान हुवा। उसने अपनी ४१ वर्ष की कार्यवाही में केवल एक समय कलिंग देश के राजासे युद्ध कियाथा। परन्तु उसमें रक्तपात बहुत हुवाथा। इससे उसके मन को बड़ा आघात पहुंचा था। एवं वह बौद्ध पन्थ की तरफ झुका, युद्ध करने की प्रथा को बन्द कर उसने धर्मकी स्थापना की थी। अपने राज्यकाल के सोलहवें और सत्रहवें वर्ष उसने अपने राज्य में बड़ी बड़ी शिलाओं पर चौदह शासन खुदवाये थे।

उनमें अपनी राज्य पद्धति का वर्णन किया है। तत्पश्चात् वह तीर्थयात्रा करने के निमित्त निकला था। लुम्बिनी उद्यान कपिलवस्तु सारनाथ श्रावस्ती गया कुशी आदि क्षेत्रों के उसने दर्शन किये थे। फिर उसने संन्यास लिया और मगधदेशकी प्राचीन राजधानी राजगृहमें परलोकवासी हुवाथा। उसके समय में राज्यका विस्तार बहुत बढ़ गया था उसने बहुत से मकानात (स्तूप) मीनार आदि बनवाये थे। उनकी सहायतासेही उस समयका इतिहास जाना जा सकता है। उसके राज्य शासन में की गई सुधारणायें इतनी हैं कि इस समय हम उनके विषय में कुछ कहना नहीं चाहते। उसको दो स्त्रियां थीं। उनमें से चारुवाकी का पुत्र तीवर था वह अशोक के पहिले ही मर गया था। अशोक के पश्चात सुयश दशरथ संगत शालिशुक सोम सर्मा व बृहद्रथ

नामके राजा एक के पश्चात दूसरे गद्दीपर बैठे थे। अन्तमें बृहद्रथ के सेनापति पुष्प मित्रने राजाको मार डाला। इस प्रकार मौर्यवंश का अन्त आनेपरभी ईसा की सातवीं सदी तक अशोक के वंशजही मगध देशका राज्य करते थे। इस के पश्चात् शुंग वंषका अभ्युदय हुवा।

बृहद्रथ का वध करके पुष्पमित्र गद्दी पर बैठा उसने शुंगवंश की स्थापना की। काबुल के राजा मीनॅन्डर (मिलिन्द) ने हिन्दुस्तान पर चढाई की थी। एवं सिन्धुनदी के मुहाने का प्रान्त तथा काठियावाड आदि जीत लियेथे। मथुराकोभी जीत लियाथा। राजपूतानामें चितौड के पास का मध्यमिका (आजकलकानागरी) नगर हस्तगत कियाथा। दक्षिणमें साकेत (अयोध्या) का घेरा डालाथा। एवं पाटलिपुत्र तक को लेलेनेका डर दिखलाया था। इसी समय कलिंग के राजा कारवेलने मगध देश के पूर्वभाग की ओर चढाई करके बडा भारी युद्ध किया। उसमें मिलिन्द हार गया। इस समय नर्मदा के प्रान्तका प्रतिनिधि पुष्पमित्र का बेटा अग्निमित्र था उसकी राजधानी विदिशा नामकी (आजकलका बेसनगर वा भिलशा) नगरी थी। उसने विद्‌र्भ देशके राजाको पराजित किया था। पुष्पमित्रने अश्वमेध यज्ञ किया था। घोडेके साथ अग्निमित्र के बेटे वसुमित्रको भेजा था। यवन लोगोंनें सिन्धुनदीके किनारे घोडे को पकडा तब उनको हराकर घोडेको छुडा लियाथा। पुष्पमित्र मरचुकाथा तब उसके पश्चात् अग्निमित्र आदि नव राजा हुए।

अन्तिम दशवां राजा देवभूति अत्यन्त विषयासक्त था। वह उसी में मर गया।

इसी बीच कण्व वंशभी होगया। देव भूति के ब्राह्मण प्रधान वसुदेव देवभूति के वध करवाने में सम्मिलित था। एवं उसका सिंहासन भी अपने आधीन कर राजा बन बैठा। उनके वंशमें उसके बाद तीन राजा हुए। अन्तिम नृपति को अंध्र वा शातवाहन राजाने मार डालाथा। एवं वह वंश समाप्त हो चुकाथा

अंध्रलोग द्रविड देशके थे। उनका राज्य कृष्णा और गोदावरी नदी के मुहानेपर हिन्दुस्तान के पूर्व की ओरथा। उसका पहला राजा शिशुक वा सिमुक था। उसकी राजधानी कृष्णा नदी के किनारे श्री काकुल (संकसल ?) नगर था। उसके द्वितीय (सम्राट) राजा कृष्णने नासिक तक राज्य फैलाया था। फिर इसवर्ष में किसी एक राजाने सुशर्मा राजाको मार उसका राज्य हथिया लियाथा। तत्पश्चात् हाल नामका राजा गद्दीपर बैठा था। उसने सप्तशती नामका पुस्तक प्राचीन मराठी भाषा में लिखाथा। उसको बहुत से लोग शालीवाहन या शातवाहन कहते हैं। राजा गौतमीपुत्र श्री शातकर्णी तथा राजा वासिष्ठिपुत्र श्री पुलुमायी के शासन कालमें पश्चिम के किनारे पर स्थायी भावको प्राप्त परदेशीय क्षत्रप राजाओंकी तथा आन्ध्रोंकी आपसमें लड़ाई हुईथी। राजा गौतमीपुत्र ने क्षहरावतंश को हरा कर उसका राज्य छीन लियाथा। उसके पुत्र श्री पुलुमायीने उज्जयिनी के क्षत्रप

रुद्रदामाकी लडकीके साथ शादी कीथी। परन्तु फिर श्वसुर दामाद मेंही छिड गईथी। उसमेंश्वसुर का ही विजय हुवा था श्री पुलुमायी मर गया। उसके अनन्तर गौतमीपुत्र यज्ञश्रीका नाम सुनाई पडताहै। इस वंशके अन्तिम तीन राजा विजय, चन्द्रश्री व पुलुमायी थे। इसी समय कुशान वंशके राजाओं में से अन्तिम नृप वासुदेव मर गया तब ईरान के सस्सनीयवंश का जोर बढाथा।

सीरियाके साम्राज्यमें लगभग एकही समयमें दो बडी क्रान्तियां हुई थीं। प्रथम बक्ट्रियामें एवं द्वितीय पार्थियामें उसका प्रभाव हिन्दुस्तान परभी पडाथा। बॅक्ट्रिया प्रान्त अफगानिस्तान और आक्ससनदी के उत्तर में था। उसकी और मौर्य साम्राज्य की सरहद पर हिन्दुकुश पर्वतथा। यह राज्य डिओडोटसने संस्थापित कियाथा। इस अरसेमें उसको नष्ट करदिया था। पार्थियाके राज्य मिथ्रेडेटीसने सिन्धु नदीतक राज्यका विस्तार कियाथा। पार्थिया प्रान्त आर्टेबेनस के और बेक्ट्रिया प्रान्त युथीडेनसके अधिकार में था, तब सीरिया के राजा ॲन्टिओकस ने इन दोनों पर चढाई कीथी। परन्तु इसमें उस को सफलता नहीं मिली। पश्चात ये दोनों प्रान्त स्वतन्त्र हो गये थे। फिर ऑन्टिओकसने काबुल पर चढाई की थी। उस समय वहां का राजा सुभागसेन था। उसने ऑन्टिओकस को कर देना स्वीकार किया था उसके अनन्तर बक्ट्रियाके राजा युथीडेमसने भी हिन्दुकुश

पर्वत की दक्षिण ओर चढ़ाई करने के लिये डीमीट्रीअस नामक अपने (सेनापति) बेटेको भेजा था। उसने पश्चिम पंजाब काबुल तथा सिन्ध जीत लिये थे। इस प्रकार जिस समय वह अन्यत्र विजय प्राप्त कर रहा था इतने में युक्रेटाइडीस नामके उसके नये शत्रुने बॅकट्रिया प्रान्त हथिया लिया। इतनाही नहीं किन्तु हिन्दुस्तान में उसके जिन प्रान्तों को भी अन्तमें डीमीट्रियसने हस्तगत करलिया था, इसके बाद युथीडेमस तथा युक्रेटाइडीस के वंशज हिन्दुस्तान के अनेक विभागोंपर राज्य कर रहे। पश्चात युथीडेमस के वंशजोंका अधिकार बेक्ट्रिया से नष्ट हो गया था। केवल हिन्द में ही कुछ भाग का शासन करते थे। डीमीट्रियसने जो हिन्द में कुछ प्रान्त कबजे किये थे, उसमें उसके वंशज एपॉलोडोटस तथा मीनन्डर ने बहुत कुछ वृद्धिकीथी। मीनॅन्डर हीडॅस्पस (वितस्ता वा जेहलम) नदी की इस पार आया था। उसके सिक्के भृगुकच्छ (भड़ोच) में चलते थे। वह शाकल (सियालकोट) में रहता था। ग्रीक वंशका हिन्दुस्तान का अन्तिम राजा हर्मीअस था। उसका राज्य कुशान वंशके राजा कुजूलकादाफिसीझ ने जीत लिया था। शिन्दे सरकारके विदिशा (बेसनगर) से एक शिला लेख उपलब्ध हुवा है उसको देखनेसे मालूम होता है कि हिन्दुस्तान पर ग्रीक लोगों का अमल रहा था। यह लेख भागभद्र राजा के राज्यकाल के चौदहवें वर्ष का है। उसमे ॲन्टाल्किडास राजाका नाम और

उसके वकील डायन के पुत्र—हेलिओडोरस का नाम मिलता है।*

'कालकाचार्य कथा' नामक जैन पुस्तक में ऐसा लिखा है कि मध्य हिन्दुस्थानमें शक लोगोंका राज्यथा। उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्यने उनलोगों को हराया था। एवं ईसासे ५८ वर्ष पहिले विक्रम संवत् चलाया था। पश्चात ईसाके ७८ वें वर्ष में शक राजाने अपना संवत्सर चलाया था। शकलोग जगझार्टीस नदी तथा बॅकट्रियाके और सोग्डिआना (बुखारा) के उत्तर चिरकाल-तक रहे थे। फिर युएचि लोगों ने उनको दक्षिण में भगा दिया था। पल्लव पार्थियनों में से ही थे। पर वे राज्यकर्त्ताओं के उच्च वंशके न थे। वे डांगिआना (शकस्तान) आराचोशिआ (कन्द हार) और गेद्रोशिया (उत्तर बलूचिस्तान) प्रदेशमें रहते थे। शक एवं पल्लव अपने को राजाधिराज शब्द से पुकरवाते थे। यह पदवी (इल्काब) ईरान के राज कुटुम्ब की थी। 'क्षाथिआना क्षाथिअ' (क्षत्रियाणां क्षत्रियः) का अपभ्रंश थी। अब भी वे शाहानु शाहि (शहेनशाह) के रूपमें कही जाती है। शकस्तान उर्फ डूंगियाना, कन्दहार व उत्तर बलुचिस्तान इन प्रान्तोंमें पल्लव राज्य करते थे। पश्चिम पंजाब एवं सिन्ध पर शक राजाओं का राज्य था। गॉडोफर्नीझ पल्लव ने इन दोनों राज्यों को एकत्र कर दिया था। इस प्रकार ग्रीक शक पल्लव और हिन्दु इन सबों को वह अपने एक छत्रके तले ले आया था।

---

* देखो परिशिष्ट ५.

अब अन्तमें कुशानवंश बचा, हिउंग–नू नामक तुर्की फिरस्ती जमातने अपने समीप के चीनी वायव्य प्रान्तमें बसती यु एचिओं की जमात को हराया था। तब युएचि लोग पछांह की ओर भाग गये थे, पश्चात् वे बॅक्ट्रियामें चले गये थे एवंच वहां वे स्थायीभावसे रहने लगे थे। उनके राजाका नाम कादफिसीझ था। उसने अफगानिस्थान और सोग्डिआना (बुखारा) प्रान्त कवजे कर लिया था, वह आयुके ८० वें वर्ष मरा तबउस का बेटा दूसरा कादफिसीझ तख्तनशीन हुआ, वह पंजाब व काशी पर कब्जा करने के बाद मरा, तब कनिष्क राजगद्दीपर बैठा। युएचियों के समय से ही हिन्द और रोमका व्यापार शुरु हुवा, कंबोज चीन आदि देशान्तरोंमेंभी कनिष्क प्रख्याति अशोक के समानही थी, उसकी राजधानी पुरुष पुर (पेशावर) थी, उसने १३ मंजिल का चारसौ पाद की उंचाई का लोहेका (स्तूप) स्तंभ उभरवायाथा। वह ईसवीसनके नवम शताब्दि तक टिका था। उसने चीन काभी कुछ थोड़ासा हिस्सा जीत लियाथा। तबसे चीन में बौद्ध धर्म का अधिक प्रचार हुवा। कानिष्क ने कब बौद्ध मत का स्वीकार किया था यह ठीक ठीक नहीं कहाजा सकता। लेकिन वह गद्दीपर बैठने के बहुत वर्ष बीतनेपर बुद्धधर्मानुयायी बनाहोगा ऐसा प्रतीत होता है। ऐसा होनेपरभी वह हिन्दुदेवताओं की पूजा करता था। उसके वासिष्ट और हविष्क नामके दो पुत्रथे, वासिष्ट मरगयाथा इसलिये कनिष्क के पश्चात् हविष्कही गद्दीपर बैठाथा।

काश्मीर काबुल और मथुरा उसके ताबे में थे उसका राज्यकाल पूरा होनेपर वासुदेव सिंहासनासीन हुवा इतनेमें बॅबीलोनिया में भयंकर ज्वर फूट निकला। वह पार्थिया और रोम तक में फैला था। हिन्दुस्थान में भी वह फैला था ऐसा कहते हैं तब से कुशान वंश की भी अवनति होने लगी। कुशानवंश तथा अंध्रवंश लगभग एक ही समय में नष्ट हुवे थे। और इसी समय ईरानमें अर्सकिदनवंश का उच्छेद हो कर सस्सनीय वंशकी शुरुवात हुई थी। विष्णु पुराणमें आभीर, गर्दभिल, शक, यवन और बाल्हिक आदि वंशोंके नाम दिये हैं। कुशानवंशका अधिकार काबुल प्रान्त तथा पंजाब प्रान्तमें रहा था। इस अवसरमें हूण लोगोंनें उसको अच्छी तरह ध्वस्त कर डाला था। उसके किसी राजाने ईरान के सस्सनीय (राजा दूसरा हारमझद) वंशको अपनी बेटी दी थी। ऐसा भी कहते हैं।

चौथा प्रकरण

गुप्तवंश और समुद्रगुप्त

कुशानवंश व अंध्रवंश नष्ट हुए तो इ. स ३२० में गुप्तवंश उदय को प्राप्तहुवा। इस दरम्यान वर्षोंका इतिहास भलीभांति अबतक नहीं मिलसका। पांचवीं सदी तक पाटलि-

पुत्र एक राजधानी के तौर पर मानाजाता था। इतनाही ज्ञात होताहै। परन्तु वहां कौनसा वंश राज्यकरताथा इसविषय में कुछभी नहीं कहसकते। इस्वी सन ३२० में गुप्त वंश के स्थापकोंने लिच्छविकुल की लड़की के साथ परिणय कियाथा। इससे यह प्रतीत होता है की तीसरी सदी में पाटलिपुत्र तीरभुक्ति के वैशालि लिच्छवि लोगों के आधीन था। ये लिच्छविलोग मूलतः कौन थे। इस विषयमें कुछ साधन मिलते हैं। कालिदासने रघुवंश के चौथे सर्ग में ६० से ८१ तक केश्लोकोंमें रघुकी चढ़ाई का वर्णन लिखाहै उससे मालूम होताहै कि प्राचीन समय में ईरान और कंबोज (तिब्बत) बीच व्यवहार चलताथा। एंवच कालिदास (लगभग ५५० इस्वी) के समय में एक ओर से ईरान से हिन्दुस्थान के बीचका तथा दूसरी ओर ईरान और कंबोज के रास्तेका परिचय भारतीयों को था। कंबोज की अनेक पुस्तकों में वहां के प्रारंभिक राजाओं को लि-त्स-छिय वंशका कहाहै। इस शब्दसे लिच्छवि शब्द बना होगा। शायद ऐसाभी हुवा हो कि सिकन्दर बादशाहने बॉक्ट्रिया के राजाओंने और उनके बाद सीथियन (युएचि) लोगोंने लगभग ईसाके १५० वर्ष पूर्व सोग्डिआना स्वायत्त किया तब हेरातके पास आये हुवे निसिबिस्के कतिपय ईरानी कंबोज से होकर हिमालय के प्रदेशमें उतर आये हों। इस प्रकार से यह ज्ञात होता है तथा कितनों के कथनानुसार लिच्छवि लोग मूलतः कंबोजसेनहीं सुतरां ईरानसे आयेथे। उन्होंने

ईसासे पूर्व आठवीं सदीमें निसिबिसको त्याग हिन्दुस्तान में प्रवेश कियाथा। ऐसा अनुमान होसकताहै। हमारे मनुस्मृति के दसवें अध्याय के २२ वें श्लोक में इन निसिबिओं को निच्छिवि कहाहै वह श्लोक यह है *। मनु महाराजने इन निच्छवि लोगों को वस्तुतः व्रात्य क्षत्रिय कहा है। भविष्य पुराण १३९ वें अध्यायमें ३३ से ६५ पंक्तियों तक सूर्य की हावनी नामक स्त्री मिहिर गोत्र के ऋषि ऋजुश्वा की बेटी निक्षुमा के विषयमें लिखा है। वह ईरान के निसबिओं की लड़की थी। ऐसा अनुमान बहुत से लोग करते हैं। क्योंकि वह सूर्यकी पूजा करती थी। इन्होंने लगभग १११ ईस्वीमें अपने शककी शुरुवात की थी। लेकिन इसका विश्वसनीय इतिहास अबतक प्राप्त नहीं हुवा। इस वंश का पहिला राजा जयदेव ३३० से ३५५ तक एवं प्रथम शिवदेव लगभग ६३५ में ध्रुवदेव ६५४ में वृषदेव ६६० में राज्य करते थे। उनके बाद शंकरदेव व धर्मदेव नामके राजा हो गये हैं। धर्मदेवका पुत्र मानदेव लगभग ७०५ में राज्य करता था। उसके बाद नरेन्द्रदेव उदयदेव दूसरा शिवदेव महिदेव, वसन्तदेव, जयदेव परचक्रकाम (इ. स. ७५८) इतने राजाओं के नाम उपलब्ध हुवे हैं। अजातशत्रुके समयसे लेकर इस्वीसन् ३०८ तकका पाटलिपुत्र एवं उसके आसपासके देशके राजा

---

* झल्लोमल्लश्च राजन्याद्व्रात्यान्निच्छिविरेवच।
नटश्च करणश्चैव खसो द्रविड एवच ॥

चन्द्रगुप्तने वैशालि के कुलकी कुमारदेवी नामक राजकन्या के साथ ईस्वी सन् ३०८ में विवाह कियाथा। वहांतक का लगभग आठ शताब्दिका लिच्छवि वंशका इतिहास छुपाहुवा है। कुमार देवीके विवाहसे इसवंशका नाम फिर सुनाई देने लगाथा। इससे मौर्यवंशसे भी महान इस गुप्तवंशके स्थापना का पाया डाला गयाथा ऐसा प्रतीतहोता है। कुमारदेवी की शादी के कुछ पहिले चन्द्रगुप्तको मगध तथा आसपासके प्रान्तोंमें सर्वोपरि सत्ता प्राप्त हुईथी ऐसा मालूम पड़ता है। यहभी अनुमान हो सकता है कि जब यह शुभ विवाह आबद्ध हुवा तब लिच्छवि लोग प्राचीन राजधानी पाटलिपुत्रके अधिकारी थे। और इस वैवाहिक संबन्धसे चन्द्रगुप्त कुमार देवीके बाप दादाओंकी उपभुक्त महान पदवी को प्राप्त करसकाथा। पूर्व समय में वैशालि के लिच्छवि पाटलिपुत्रके राजाओंके प्रतिस्पर्द्धी थे। पश्चात् पुष्पमित्रके बाद उत्पन्नहुई क्रान्तिमें उन्होंने पाटलिपुत्रको जीतलिया था।

चन्द्रगुप्तके पिता का नाम घटोत्कच था एवं दादा का नाम 'गुप्त' था। यह दोनों अपने जीवनमें (स्थानिक) सर्दारकी पदवीतकही पहुंच सकेथे। ऐसा अंग्रेजोंका कथनहै। परन्तु लिच्छविकुलकी कन्याके साथ संबन्ध करने से चन्द्रगुप्त इतनी ऊंची पदवी को प्राप्त कर सका था, कि वह अपने को राजाधिराज कहलाने में समर्थ हुवा था। उसने अपने नाम के अपनी रानी के नाम के एवं लिच्छविलोगों के नाम से अंकित सिक्के ढलवाये थे।

उसने गंगा और यमुना के संगम तक अपने राज्य का विस्तार बढ़ाया था। उसने अपने थोड़ेसे राज्यकालमें तीर भुक्ति दक्षिण मगध अयोध्या तथा समीपके कतिपय प्रान्त जो कि फलशस्य संपन्न तथा उन्नति की चरम सीमा तक पहुंचे हुवे थे, उनपर अपना शासन चलाया था। पहिले एक ऐसा रिवाज था कि कोई भी राजा अपना असाधारण बल बतलाकर अथवा अन्य किसी प्रकारसे अपना प्रभाव सुदूर के देशों तक डालता तब अपने नाम का शक स्थापन करता था। इस रस्मको साबित करने को चन्द्र-गुप्तने अपनी पूरी योग्यता बतलाई थी। इसी से वह विधि के अनुसार: सिंहासन पर आसीन हुवा एवं अनेक शताब्दियों से पाटलिपुत्र के साथ संबन्ध रखनेवाले महासत्ता का वंशज रूप से अपने को उद्घोषित किया। उस दिनसे उसने भी अपने नामका शक आरंभ किया। यह शक ईसाकी तेरहवीं सदीतक भिन्न भिन्न प्रान्तों में चलताथा। गुप्तशक का प्रथम वर्ष इस्वीसनकी ३२० की फर्वरी की २६ वीं तारीख से प्रारंभ होकर इस्वसिन की ३२१ वीं मार्च की १३ वीं तारीख को समाप्त होताथा इससे यह कहसकतेहैं कि २६ वी फर्वरी इ. स. ३२० के दिन चन्द्रगुप्त गद्दीपर बैठा था। १० या १२ वर्ष राज्य करके वह इस्वी ३३० में अथवा ३३५ में मरण को प्राप्त हुवा था।

ऐसा कहाजाता है कि सिकन्दर बादशाह जो चन्द्रगुप्तका सम-कालीन था वह इस गुप्तवंश का चंद्रगुप्त था ऐसा हो तो गुप्तवंश

को इ. स. में नहिं परन्तु इ. स. से पूर्व चौथी शताब्दि में होना चाहिए इस विवादग्रस्त विषयकी चर्चा अन्यत्र की जाएगी यहां तो केवल अब माने जानेवाली बातों काही उलेख किया है जिनका अन्यत्र खंडन होगा।

मरनेसे पूर्व ही चन्द्रगुप्तने राजकुमार समुद्रगुप्त को पसन्द कियाथा। इस कथा का नायक यही समुद्रगुप्त है बहुत वर्ष पहिले होनेसे उसका इतिहास सम्पूर्ण उपलब्ध नहीं होता। उसकी चढ़ाइयों के विषयमें विस्तारसे लिखने के पूर्व यह पूर्व पीठिका रूप लेख अत्यन्त आवश्यक जानपड़ा। क्योंकि वह कैसे संयोगोंकेबीच गद्दीपर बैठा। और उसके पूर्व हिंदुस्थान पर क्या क्या बीती यह जान लेनेसे उसके इतिहासपर अच्छा प्रकाश पडसकता है। अबहम समुद्रगुप्त के जीवन चरित्र लिखने का आरंभ करते हैं। समुद्रगुप्त के समयमें 'कच' अथवा 'काच' नामक राजाका नाम दीख पडता है। उसके ढलवाये हुए सोनके सिक्के मिले हैं। वह समुद्रगुप्तके सिक्के से हूबहू मिलते हैं। इससे यातो वह समुद्रगुप्तका भाई था जिस से समुद्रगुप्तके पूर्व वह सिंहासन पर बैठाहोगा, अथवा वह समुद्रगुप्त ही था ऐसा कईलोगोंका मतहै। मैंतो कहताहूं कि ये सिक्के घटोत्कच के होंगे। कच अथवा काच वही समुद्रगुप्त ऐसा कहने के कोई सबल कारण नहीं हैं। उसके सिक्कों पर 'सर्व राजोच्छेत्ता' का उल्लेखहै। यह उल्लेख केवल समुद्रगुप्त के सिक्कों परही है। यहसच लेकिन घटोत्कच का इतिहास जबतक

नहीं मिलता तबतक यही कहाजा सकता है कि वे सिक्के घटोत्कच के हैं। समुद्रगुप्त लगभग इस्वी ३३० में गद्दीपर बैठा। उसकी माता लिच्छवि कुटुंब कीथी। आगे के राजा अपने पिताके पराक्रमपर ही सन्तुष्ट होकर बैठने वाले न थे। सुतरां स्वयं नवीन प्रदेश जीतनेमें व राज्य के विस्तार करनेमें ही अपना सच्चा पौरुष समझते थे। इसी नियमके अनुसार समुद्रगुप्तने भी युद्ध और चढाई करनेमें ही अपना जीवन बिताने का निश्चय किया। एकराजा के योग्य उसमें सब शक्तियां थीं और योद्धा की योग्यतानुसार सब युद्धोंमें उसने विजय प्राप्त कियाथा। गायन करने में भी उसने अपूर्व कौशल लाभ किया था। उसके ढलवाये हुए सिक्कों पर वह वीणा लिये एक पलंग पर बैठा हुवा है। बहुत से सिक्कों में भाला लेकर किसीमें धनुर्बाण लेकर किसी में फरसा लेकर वहां खडाहुवा दीख पडताहै। भालेवाले सिक्कों पर "समरशत विततदिग्विजयो जितारि पुरोऽजितो देवो जयति" ऐसा अंकित है। एवं बाणवाले सिक्कों पर "समुद्रगुप्तो देवो विजिता वनिरप्रतिरथो विजित्य क्षितीमवजित्य" यह मुद्रितहै। इससे वह कितना बडा युद्ध कुशलथा यह समझा जा सकताहै। ऐसाभी कहते हैं कि वह बडा कविथा। उसने बहुतसे काव्यभी निर्माणकियेथे। लेकिन दुर्भाग्यवश आज उसका एकभी काव्य नहीं मिलता। वह पंडितों के सहवासमें ही अपना बहुतसा समय व्यतीत करताथा एवं पुराणग्रन्थों के अभ्यास

करने में अपनी बुद्धिका उपयोग करताथा। एरण काशिलालेख व गयाका ताम्रपट देखनेसे उसका चक्रवर्तित्व सिद्ध होता है। *

वास्तव में विचार करने से यह प्रतीतहोता है कि उसका मुख्य व्यवसाय परराष्ट्रों पर चढ़ाई करने का हीथा। इसकी चढ़ाइ-योंके इतिहास का केवल हमारे पास एकही साधन है। प्रयाग के पश्चिम की ओर चौदह कोस के फासले पर यमुनाके किनारे पर बसे हुवे कौशांबी नगरमें एक स्तम्भ पर हरिषेण कविका लिखाहुवा लेख मिला है। यह स्तम्भ इस समय प्रयागराजके किले में संभालकर रखदिया है। यह लेख कब खोदा गयाथा यह इसमें नहीं बतलाया। परन्तु ऐसा ज्ञात हुवाहै कि वह समुद्र-गुप्तके मरनेके बाद खुदवाया गया है। इससे उसके बेटे चन्द्रगुप्त-विक्रमादित्य के हुकुम से लगभग ३८० में वह खुदवाया गया होगा। इस लेखमें समुद्र गुप्तकी चढ़ाइयों के विषयमें जो मुख्य लेखहै उसकी ३३ पंक्तियाहैं। उसमें पहिली १६ कवितामें लिखीहैं और शेष गद्य है। इसका लेखक हरिषेण कवि चन्द्रगुप्त विक्रमा-दित्य के राज्यकालमें सेनापति बना था। वह ‘ खाद्य टपाटिक ’ गुणयुक्त था। एवंच महान सेनापति ध्रुवभूतिका पुत्रथा। यह लेख तिल भट्टक नामक अधिकारी के देख भाल में कुतरवाया गया था। § अपने लेखमें कविने समुद्रगुप्तकी चढाइयों को छःभागमें विभक्त किया है (१) समुद्रगुप्तने आर्यावर्तके अनेक राजाओं को हांक दिया था,

* देखो परिशिष्ट सं. २ तथा ३ § देखो परिशिष्ट १.

उनमेंसे नवके नाम कविने दिये हैं। (२) अरण्य देशों के सम्पूर्ण राजाओंको अपने नौकर बनादिया था। (३) दक्षिण के अनेक राजाओं को प्रथम पकड़कर फिर उनको छोड दिया था उनमेंसे १२ के नाम कविने दिये हैं। (४) सरहद्दके पांच राज्यों से सन्मान तथा खराज लिया था। (५) सरहद्दपर की अनेक जातियों से उसने कर लिया था। उनमेंसे केवल ९ जातियों के नाम कविने लिखे हैं। (६) दूरके प्रदेशों वाली ५ प्रजाओंसे एवं सिंहलद्वीप निवासियोंसे उसने सन्मान दर्शक सेवायें तथा मुबारक बादी देनेवाली भेट स्वीकार की थीं।

पांचवां प्रकरण

समुद्रगुप्त की चढाई

हरिषेण कवि के द्वारा वर्णन किये गये सब राजाओं तथा सब जातिओंको पहिचानने का प्रयत्न अब हम करेंगे। अर्थात् समुद्रगुप्तने कितने विशाल क्षेत्रमें अपनी सत्ता फैलाई थी इसबात का अनुमान हो सकेगा। सबसे प्रथम आर्यावर्त के नव राजाओं का विचार करना है। आर्यावर्त अर्थात् नर्मदाके उत्तर हिन्दुस्थान का सर्वभाग जैसाकि मनुने कहा है

आसमुद्रात्तु वै पूर्वात् आसमुद्रात्तु पश्चिमात्।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्तं विदुर्बुधाः॥

इन नव राजाओं के राज्यों को इस्वीसन् ३३० से ३३६ तक जीत कर समुद्रगुप्तने अपने राज्यमें जोडदियाथा। कविने उनके नाम इस प्रकारलिखे हैं (१)रुद्रदेव (२) मतिल (३) नागदत्त (४) चन्द्रवर्मन् (५) गणपतिनाग (६) नागसेन (७) अच्युत (८) नन्दिन् (९) बलवर्मन्। इसमें से रुद्रदेव मतिल नन्दिन् और बलवर्मन् इनके विषयमें जानकारीकेकुछभी साधन उपलब्ध आज तक नहीं हुवेहैं। नागदत्त शायद रामदत्त और पुरुषदत्तके वंशका होगा। उत्तरके क्षत्रपलोगों के सिक्कोंके साथ रामदत्त व पुरुषदत्त के सिक्कों का बहुत साम्य मिलता है। प्राय: चन्द्रवर्मन् महाराजा कहलाता था। बंगाल में बांकुरा प्रान्त के राणीगंजसे आठकोस दूर पर बसे हुवे सुसुनिया गांवमें एक शिलापर खोदा हुवा इस महाराजा संबन्धी छोटासा लेख मिलाहै। गणपतिनाग नव नागराजाओं के वंशकाथा। इनराजाओं की राजधानी ग्वालियर तथा झांसी केबीच पद्मावती (आजकलका नरवर) नगरीथी। गणपति के नाम के हजारों सिक्के मिलेहैं। लेकिन किसीपर नागशब्द नहीं है तथापि स्कन्दनाग बृहस्पतिनाग देवनाग आदि महाराजाओं के सिक्कों से मिलता जुलताहै। एवं यह सब मुद्रिकायें नरवर सेही प्राप्त हुईहैं। इसपरसे यह कह सकतेहैं कि गणपति नागवंश काथा। नागसेन शायद उसके बहुत पहले के वीरसेनके वंशका राजा होगा। वीरसेन के समय के सिक्के पंजाब तथा वायव्यप्रान्तोंसे अक्सर मिलजायाकरते हैं। अच्युत कानाम दक्षिण तथा उत्तर हिन्दमें बहुत

मशहूरथा। जैसे अच्युतप्य अच्युतराय अच्युत विजय राघव जयकर अच्युतदन्ती अच्युतस्थल। समुद्रगुप्तसे पराजित अच्युत अहिच्छत्रका राजा होगा। संयुक्त प्रान्तके बरेलीप्रान्तके आंवला के पासका रामनगर वही अहिच्छत्रहोगा प्राचीन कालमें वह पांचाल की राजाधानी थी। रामनगरसे मिले सिक्कों पर 'अच्यु' राजाका नाम दीखता है। शायद वह अच्युत यही था। समुद्र-गुप्तने करीबन ३४५-३५० में अच्युत पर विजय प्राप्तकी होगी।

अरण्य प्रदेश के जिन राजाओं को उसने अपना नौकर बनाया था। वे नर्मदा नदीके उत्तरमें रहने वाले गोंड आदि जातिओं के सर्दार होनेचाहिये। ५२७ इस्वीमें डहाल (अथवा डाहल आजका बुंदेलखंड रेवा) के महाराजा संक्षोभ के आधीन १८ अरण्य राज्योंके राजकर्ता भी शायद यही हों, ऐसा अनुमा-नकियाजासकताहै। आजभी नर्मदा के उत्तर बुन्देलखंडमें मध्य हिन्दुस्थानमें व मध्यप्रान्तोंमें बहुतसे अरण्य उपस्थित हैं।

इस प्रकार उत्तर के अनेक राजाओं को एवं अरण्य प्रदेश के अनेक सर्दारों को वश करके समुद्रगुप्तने दक्षिण की ओर अपनी दृष्टि की थी। वहां लगभग ३४७-३५० इस्वीतक हजार दो हजार कोस की मुसाफिरी की होगी। दक्षिण के १२ राजा ओं केनाम हरिषेण कविने इस प्रकार दिये हैं (१) कोशलका महेंद्र (२) माहाकान्तारका व्याघ्रराज (३) केरलका मन्तराज (४) पितृ-पुरका महेंद्रगिरी (५) कोट्टुरका स्वामिदत (६) एरंड पल्लका दमन

(७) कांचीका विष्णुगोप (८) अवमुक्तकानीलराज (९) वेंगीका हस्तिवर्मन् (१०) पालक्कका उग्रसेन (११) देवराष्ट्रका कुबेर (१२) कुस्थलपुरका धनंजय। अब इन सबका पहिचाननेका प्रयत्न करेंगे।

कोशल दो हैं उत्तर कोशल और दक्षिण कोशल। नर्मदा के उत्तर का कोशल यह बहुत करके अयोध्या मानाजाता है। नर्मदा के दक्षिण कामहाकोशल महानदी के उगम तक विस्तृत था अर्थात्, उत्तरमें अमरकटक के सामने के महानदी के मुखतक अर्थात् पश्चिममें वेनगंगाके निम्नप्रदेशसे पूर्वमें हरद व जोक नदीतक वह प्रान्त फैलाहुवाथा। यहप्रान्त उत्तर दक्षिणमें सौकोस लंबा एवं पूर्व पश्चिममें सौकोस चौडा था इस प्रान्तमें मध्य प्रान्त के दक्षिण तथा उत्तर के जिलोंका भली प्रकार समावेश होजाता था। इसका आजकल मुख्य नगर नागपुर है। उस समय रायपुर जिले की महानन्दी के समीपस्थ श्रीपुर मुख्य नगर था। कोशल पर धावा करने के लिये समुद्रगुप्त प्रयागसे कूचकर पर्वतों के नीचे से जाकर एवं रेवानदी के बनों को लांघकर ही गया होगा। प्रयाग से श्रीपुर समरेखा में १४० कोसहै। कोशल के महेंद्र को समुद्रगुप्तने जीत-लिया था इस के अलावा उस के विषयमें अब तक कुछ ज्ञात नहीं हुवा है।

महाकान्तार अर्थात बडा जंगल। मध्यप्रान्तों के अरण्य के भागोंका वर्णन इस शब्द से यथार्थ होजाता है आजकल का बैतूल छिन्दवारा आदि जिले इस भागमें आगये हैं। एवं

कविभी इन्हीं जिलोंका उल्लेख करता प्रतीत होता है। इस महाका-न्तार के व्याघ्रराजको समुद्रगुप्तने पकड़कर छोडदिया था व्याघ्रराज के विषय में अन्य कोई उल्लेख नहीं मिलता । पुराने समयका व्याघ्रका सिक्का उत्तर हिन्दुस्थान में मिला है। पंजाब के लुधियाना जिले के सुनेतके सिक्केसे यह सिक्का मिलता है। नागोधके उच्छ कल्प गांव के राजाजयनाथ कापिता व्याघ्र हीं व्याघ्रराज यह होतो कोई आश्चर्य नहीं । जयनाथ इ. स. ४९३-४९६ मेंथा ।

केरल हिन्दुस्तानके दक्षिणभागमें है। समुद्र के पश्चिम घाटों के बीचका जो संकरा उपजाउ टुकडा आज मलबार के नामसे कहा जाता है, वही यह केरल अर्थात् उत्तर किनारे के गोवाके पासकी कंगरोट नदीसे कन्या कुमारी (कौमोरिन) के भूशिर तक सम्पूर्ण प्रदेश केरल नाम से कहा जाता था इसका सम्पूर्ण इतिहास नहीं मिला । एवं मन्तराज के विषय में कहीं कुछ उल्लेख भी नही है ।

पिष्टपुर यह मद्रास इलाके के गोदावरी जिलेमें आया हुवा पिथापुरम्, आजकलका पिट्टपुरम् भी यही पिष्टपुरहोगा । यह शहर बहुत पुराना है । उसमें पुराने ढंग के पच्चीकारी के बहुत से मकानात हैं । पूर्व के चालुक्य और वेंगी राजाओं की वशावली बतलाने वाले कीमती शिलालेख पिथापुरम् के एक खम्भेपर खुदे हुवे हैं । लेकिन राजामहेंद्रगिरीका कुछ भी आधार नहीं मिला शायद वह गुसांई होकर पिष्टपुरके सरदार की पदवी को प्राप्त हुवा हो ।

कोट्टुर यह सामान्य द्राविड नाम है। तंजोर मलबार व बेलगाम प्रान्तोंमें तथा अन्य स्थलोंपर ऐसे नामके गांव हैं। ईसा की शुरुआत की सदियों में कोइम्बटुर प्रान्तमें स्थित पाडियुर की बेशकीमती जवाहिर की कानोंके सबब रोमके व्यापारी इस देशमें खिंच आए थे। इसलिये कोइम्बटुर व्यापारका एक बडा स्थान होगयाथा। इससे यह कह सकते हैं कि हरिषेण कविने कोइम्बटुर के प्रान्त के कोट्टुर गांव का मनमें रखकर ही लिखा होगा। इस शहर में पुराने खंडहर अबभी दीख पडते हैं। वे पोलाचिसे चार कोस की दूरी पर हैं। पोलाचिसे आगस्टस के तथा रिबेरिअस के समकालीन रोम के सिक्के प्राप्तहुए हैं। स्वामिदत्त के विषय में कहीं कोई किसी प्रकार के नाम की उपलब्धि नहीं हुई।

एरण्डपल्ल गांव कौनसाहै। एवं उसका राजा दमन कौन है? इस विषयमें अबतक कुछ भी ज्ञात नहीं हुवा। लेकिन यह एरण्डपल्ल अवश्य खानदेशकानाम है। कोइम्बटुर के पास आये हुए सालेमके जिले में एडपादि गांव है और उसमें एक पुराना शिवालय है एवं मलबार प्रान्तमें बहुतसे गावोंकानाम 'एरा' अथवा 'एडा' शब्दसे प्रारंभ होता है।

कांची यह आजका कांजीवरम यह चिंगलपुट जिलेमें मद्रासके नैर्ऋत्य में २२ कोस की दूरीपर है। यह हिन्दुस्तान का पुराना एक पवित्र क्षेत्रहै। इस्वीसनकी ग्यारहवीं सदीमें चोल राजाओंने पल्लवों को हरायाथा। तबतक पल्लव वंशका यह मुख्य शहर

था । ह्युएनत्संगने उसके दर्शन कियेथे । उसने इसको द्राविड इस नामसे पुकाराहै । विष्णुगोप यह अवश्य प्रारंभिक पल्लव राजाओं में से एकथा । प्रायः नन्दिवर्मा के दूरके वंशजों में से विष्णुगोप अथवा विष्णुगोपवर्मा यह पल्लवराजाओं में से हीथा । शायद वह विष्णुवर्मा भीहो । इसके विषयमें ईसाकी पांचवीं सदीके लिखेहुए एक लेखमें जतलायाहै कि किसी कदंब राजाने उसे मारडाला और विशेष इसके विषयमें कुछ ज्ञात नहीं हुवा ।

अवमुक्त नामक गांव कौनसा ? उसका अधिपतिनीळ राजा कबहुवा इसविषयमें कुछ उपलब्ध नहीं होसका ।

वेंगी का राज्य साधरणतया ६० कोसके विस्तारकाथा । बंगाल के आखात के किनारे कृष्णा और गोदावरी इन दो नदियों के बीच में वर्तमानथा । आजका गोदावरी (मछ-लीपत्तन) जिला तथा राजमहेन्द्रि जिलेका थोडासाभाग, यही वेंगी राज्यथा । इसका मुख्य शहर एलोर (एलूर) से तीन कोस की दूरीपर अर्थात् कोलार सरोवरसे कुछ आगे विद्यमान था । आजका पेड्डा (बडा) वेंगी वचिन्ना (छोटा) वेंगी राजधानी रूपसे कहाजाता है । पल्लव कुटुंबके एक शाखा के राजा वहां राज्य करते होंगे ऐसा प्रतीत होता है । समुद्रगुप्त की चढाई के समय वेंगी का राज्य स्वतंत्रथा । फिर एक सदी के बाद वह कांची के राज्य के अधीन होगया था । कांची और वेंगी के राजाओं के नाम के अन्तमें वर्मा अथवा वर्मन् शब्द दीखपडते हैं । इससे ये दोनों

आपस में संबधी होंगे। समुद्रगुप्तने जिस हस्तिवर्मन् को जीत लियाथा वह पल्लव राजा कन्दर के कुटुम्बका अत्तिवर्मा राजा होगा। तामिल भाषामें अत्ति हाथी को कहते हैं। कृष्णानदी के दक्षिण गन्तुर जिलेमें स्थित गोरंद गांवमें अत्तिवर्माका शिलालेख मिला है। इसी वंशके विजयस्कन्दवर्मा के राज्य का लेख इसी स्थान से मिला है। शालंकायन कुलके राजा चन्द्रवर्मा के पुत्र विजय नन्दिवर्मा का दानपत्र मिलाहै वह ईसा की चौथी शताब्दि का है शायद वह हस्तिवर्मन् विजय नन्दि वर्मा का पिता मह वा प्रपितामह हो।

पालक्क यह मलबार जिलेके दक्षिण में आयेहुए पालघाट का भाग होगा उसका असली नाम 'पालक्काडु' है इस भाग का मुख्य शहर पालघाट चेरी है। एवं समुद्रकी समतलतासे ८०० पाद ऊंचा तापीनदी और कन्याकुमारी के भूशिर के बीच के पर्वतों की माला के मध्यमें स्थित एक अवकाशवाले स्थानमें ठहराहुवाहे। उग्रसेन के विषयमें कुछ ज्ञात नहीं हुवा। क्योंकि उसके जानने के साधन अभीतक कोई नहीं मिले।

देवराष्ट्र के विषय में भी अभी कोई निश्चित निर्णय नहीं हुवा। लेकिन ऐसा अनुमान है कि वह देवगिरी का दूसरा नाम होगा। मुसलमान इतिहासकार इस शहर को दौलताबाद के नाम से पुकारते हैं। वह पुराने जमानेका महाराष्ट्र के राजाओं का मुख्य शहर था शायद देवराष्ट्र और महाराष्ट्र एक ही हों। देव-

गिरि निजाम के राज्यमें औरंगाबादसे छः कोस पर स्थित है। एवं गोदावरी नदीसे लगभग १५ कोसकी दूरीपर है। कुबेर राजा के विषय में कुछ निश्चित नहीं कह सकते।

कुस्थलपुर के विषयमें भी कुछ निश्चित नहीं कह सकते। शायद कुशस्थलपुरका यह सूक्ष्म रूपान्तर हो। काठियावाड के वायव्य कोने में स्थित पवित्र द्वारका क्षेत्र को कुशस्थलपुर कहते थे। स्वर्गवासी पंडित भगवानलाल इन्द्रजी लिखते हैं कि महाभारत और पुराणकारों के समय में आनर्त देश का नाम प्रसिद्ध था वह आजकलके काठियावाड से मिलता जुलता है। उसका मुख्य शहर कुशस्थली (आजकलका द्वारका) था, गुप्तवंशके राजाओं का प्रवेश काठियावाड में हुवा था यह बात ध्यान में रखने लायक है। धनंजय राजा के बारेमें हम कुछभी नहीं कह सकते। समुद्र गुप्तने जीतके छोडदिये हुवे दक्षिण के बारह राजाओं का इतिहास इस प्रकारका है। अब हम सरहदपरके पांच राज्यों के साथ उसका कैसा संबन्ध था इसका विचार करेंगे। हरिषेण कविने इस प्रकार पांच राजे गिनाये हैं (१) समतट (२) दवाक (३) कामरूप (४) नेपाल (५) कर्तृपुर। अब प्रत्येक राज्य के नाम के विषय में अबहम विचार करेंगे।

समतट—अर्थात जिस प्रदेशकी नदिओं के दोनों किनारे एकसी उंचाई गहराई के साथ समतल हों वैसा प्रदेश समतट कहाता है। इससे यह नाम नीचे के बंगाल को लगसकताहै ईसाकी

सातवी सदीमें ह्युएनत्संग समतट का वर्णन करते हुए लिखता है कि यह देश बडे भारी दर्याव के किनारे २५८ कोस के घेरका था। वह कामरूप से दक्षिण सौ कोस लग भग दूरी पर था एवं ताम्रलिप्ति से पूर्व लगभग ७५ कोस की दूरीपर था अतः यह कह सकते हैं कि गंगा व ब्रह्मपुत्रके बीच में यहराज्य स्थितथा जैसोर का जिला इसका मध्यस्थ भाग है। इसीजिलेमें आज कलकत्ता व ढाका है। सोलहवीं सदीमें यह 'भाति' के नामसे परिचितथा एवं उसका मुख्य शहर ढाका जिलेका विक्रमपुर था, समुद्रगुप्त ने इसराज्यके किस राजासे सन्मान एवं खराज वसूल कियाथा यह नहीं कह सकते।

दवाक का राज्य कहां परथा, यह निश्चित नही कह सकते परंतु समतट और कामरूप राज्य के नाम के मध्यमें इसराज्यका नाम हरिषेण कविने रखाहै इससे अनुमान होता है कि वह ईशान कोन के सरहद के समीप मेंहीथा। शायद वह आज के बोगरा (बग्रहा) दिनाजपुर एवं राजशाही जिलेसे मिलता हो। यह राज्य बंगाल में भी नहो यहभी संभवित है। बहुतों का कथन है कि ढाका काही नाम दवाक था लेकिन निश्चय से कुछनहीं कह सकते।

कामरूप का राज्य आज कलके आसाम से मिलता जुलता है उस समय इस राज्य का विस्तार पश्चिमीय बंगाल के रंगपुर जिले में आयी हुई करतोया नदी व लाल बाजार तक था। इसमें कूच

बिहार का राज्य तिपरा तथा मैमनसिंह का थोडासा भाग आजाताथा। आजके आसाम प्रान्तका थोडासा भाग भी इसमें सम्मिलित था। आसाम के मध्यभागमें कामरूप नामक जिलाभी आज मौजूद है। समुद्रगुप्त के तीनसौ वर्ष पश्चात आया हुवा ह्युएनत्संग भी कहता है कि ब्रह्मपुत्र नद कामरूप की पश्चिमी हद मानाजाताथा। पुण्ड्रवर्धनके राज्य का वर्णन करता हुवा वह कहताहै "इससे आगे लगभग ७५ कोस दूर पूर्व की ओर जानेपर महानदी (ब्रह्मपुत्र) को लांघकर हम किया-मो-लुपो (कामरूप) देशमें आपहुंचे। इसराज्य के किस राजासे समुद्रगुप्तने कर लिया था सो हम नहीं कह सकते। प्राचीन नेपाल ही आजका नेपाल है। लेकिन समुद्रगुप्तके समय में नैपाल की हद कितनीथी यह नहीं कह सकते। उससमय नैपाल के निम्नभाग काभी समावेश नैपाल के सरहदी राज्य के अन्दर किया जाता होगा। निम्न पर्वतों की कुदरतीसरहद तक समुद्रगुप्तके राज्य का विस्तार माना जाता होगा। वहां के कौनसे राजाको सन्मान तथा कर देने को बाध्यकियाथा सो नहीं कहसकते।

कर्तृपुर कहांपर है यह भी नहीं कहसकते, एवं इसके विषयमें और कहीं कुछउल्लेख भी नहीं मिलता। शायद वह पश्चिम हिमालयमें आया हो, आजका अल्मोडा गढवाल और कुमायूं आदि हों। और जो दूसरे चार राज्य हरिषेण कविने गिनायेहैं, वे बंगाले में एकके बाद दूसरे इस प्रकार वर्णन किया है। इससे हम यह तर्क करते हैं कि समुद्रगुप्त के द्वारा वशकियेगये राजाका अभीतक नाम नहीं मालूम हुवा।

अब समुद्रगुप्तने सरहद पर के नव ९ जातियोंसे जो कर वसूल कियाथा। उसविषयमें कुछ विचार करेंगे। हरिषेण कविने निम्नलिखित ९ जातियों के नामदिये हैं। (१) मालव (२) आर्जुनायन (३) यौधेय (४) माद्रक (५) आभीर (६) प्रार्जुन (७) सनकानीक (८) काक (९) खरपरिक।

बृहत्संहितामें बतलायाहैकि मालव लोग भारतके उत्तरीय भागमें रहते थे। अर्थात् पूर्वपंजाबसे उज्जयिनीतिक उसकी बस्तियां थी। तारानाथ नामके संस्कृत लेखकने 'प्रयागके मालव' ऐसाभी लिखाहै। वे पूर्वराजपूतानेमें पांच सदीतक रहेथे। उनके बहुतसे रसिक सिक्के मिलेहैं। उन्होंने जिसप्रान्तके साथ अपना नाम जोडा उस प्रान्तका आजतक मालवा नाम है। आजकलके मालवाके उत्तर वायव्य प्रान्तका थोडासा हिस्साहै। दक्षिणकी ओर नर्मदानदी है पूर्वमें बुन्देलखण्डका जिला एवं मध्यप्रान्तों का थोडासा हिस्साहै और पश्चिमकी ओर राजपूतानाहै। उससमय मालवाप्रान्त आजकलके राजपूताने के बहुतसे भागसे साम्यरखताथा। सिक्खलोगोंका मालवाशुतुद्रि (सतलज) के पूर्वमेहैं। विष्णुपुराणमें लिखाहैकि मालव (पारियात्र) पर्वतमें अर्थात अरवली पर्वतमें रहतेथे। उनके सिक्के जयपुरराज्यके उनियार राजाके राज्यमें आयेहुवे नागर ग्रामसे बहुतसे मिलतेहैं उनपर 'मालवजय' 'मालवणजय' आदि उल्लेख दीख पडतेहैं। ये सिक्के लगभग ईसासे पूर्व २५० वर्षसे इस्वी ३५० तक मुद्रित हुवे होंगे। नागर गांव मालव के आधी-

नथा। उनकामुख्य शहर उज्जयिनी ओर विदिशाथे। उनपर पर-कीय अमल नहीं था। वे अपनाही राज्य चलातेथे। नागर गावमें स्वराज्य चलानेवाले ब्राह्मण पीछेसे नागर ब्राह्मण कहलाये। उनके राजोंके नाम विचित्रहैं। जैसे भपंयन, यम, अथवा मय, मजुप मपोज्य, मपय, मगजश, मगजव, गोजर, माशप, मपक, पच्छ, मगच्छ, गजव, जामक, जमपय, पय, महाराय, इत्यादि यशोधर्मन तथा विष्णुधर्मन राजाका दशपुर (मंदसोर) पश्चिममालवे के शिंदे सरकारके (ग्वालियर) राज्यमें इसीनाम जिलेका एक मुख्यनगर है। वह शिवना नदीके किनारे परहै। उज्जयिनीसे वायव्य ४२ कोस दूरी-परहै। भूपाल के राज्यमें आये हुये विदिशा (भिल्सा) के ईशान में १२ कोस सुदूर में आए हुवे ग्यारिस्पुर से प्राप्त एक लेखमें 'मालवशक' के विषयमें कुछ उल्लेख है। इसके सिवाय राजपू-ताने के अग्निकोणमें आयेहुवे कणस्व गांव से प्राप्त लेखमें भी 'मालवेशानाम्' अर्थात् मालव राजाओं के 'शक' के विषयमें उल्लेखकियाहै। यह शंकही विक्रम संवत् है वह ईसासे ५७ वर्ष पूर्व शुरुहुवाथा ऐसाभी कोई कहते हैं। इस से यह प्रतीतहोता है कि मालव जाति समुद्र गुप्त के समय में बहुत बडे महत्त्व को प्राप्तथी। उनकी पूर्वतरफ की सरहद बेटवा व यमुना नदी तक थी। समुद्रगुप्त के राज्य की पश्चिमी हद्द भी यहीं तक की होगी। अतएव समुद्रगुप्तने इस जातिको अपने आधीन किया था।

आर्जुनायन जातिका प्रदेश के कहां परथा यह निश्चित

नहीं है। लेकिन अनुमान से कुछ कह सकते हैं, पुराने समयकी अर्थात् ईसासे १०० वर्ष पहिले की लिपिमें लिखे हुए 'आर्जुणा यनानां जयः' नामवाले सिक्के मथुरामें मिले हैं। उत्तर के क्षत्रपों के सिक्कों से ये सिक्के मिलते हैं। इससे यह अनुमान होता है कि इनलोगोंका प्रदेश मालव तथा यौधेय जातियों के प्रदेशों के बीच में आया होगा। अर्थात् उत्तरके क्षत्रपोंका आगरा तथा मथुरा शहर के पश्चिम भरतपुर तथा अलवर के राज्य इनलोगों के प्रदेश थे। आज इसीजगह अंग्रेज सरकार तथा देशी राज्यों की हद जहां से भिन्न होती है वहां ही समुद्रगुप्त की हद उससमय होगी। इसीलिये इनको उसने सहेलाई से अपने ताबे कर लिया था।

यौधेय जाति के विषयमें कुछ निश्चय कर सकते हैं ईसासे ३०० वर्ष पहिलेका पाणिनि कहता है कि यह जाति पंजाब में रहतीथी, उससमय के सिक्कों को देखकर प्रतीत होता है कि पंजाब के दक्षिण सिक्खों के राज्यमें तथा राजपूताने के उत्तर भागमें यह जाति रहतीथी। ये सिक्के पूर्वपंजाबके जगाधरी में से शुतुद्र (सतलज) एवं यमुनानदी के बीचके प्रदेशों से इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) व करनालके बीचके शोणपथसे कांग्रा प्रान्तसे व सहारनपुरसे मिलते हैं। इस जाति की वायव्य सरहद विपाशा (व्यासा) वा इरावती (रावी) नादियों तक पूरी होती थी। लाहोर भावलपुर बीकानेर लुधियाना और दिल्ली ये शहर इसजातिके बसने के हद थे ऐसा प्रतीत होता है। यह जाति बहुत चालाक और

लडवैया थी । इसवी सन १५० में वर्तमान सुराष्ट्र के क्षत्रप रुद्रदा-माने लिखा है कि क्षात्रियमात्रसे वीरपुरुष ऐसा इल्काब मिलनेसे (सर्व क्षत्राविष्कृत वीर शब्द) उद्धृत एवं किसीकी न सुननेवाले यौधेयों को इसने पराजित किया था । कुछवर्ष पहिले लुधियाना के सुनीत गावसे मिली हुई (तख्तियोंपर जय किसतरह प्राप्त करना इसकी युक्ति जानने वाले यौधेयों के) ऐसा लेख मिला है यह लेख ईसाकी तीसरी सदाम लिखा होगा । महान् कुशल राजा कनिष्क तथा हविष्क के सिक्के से मिलते हुवे और भी सिक्के मिले हैं । उनपर ' यधयगणस्य जय ' तथा ' यधेयन ' ऐसा उल्लेख है । ये सिक्क ईसाकी तीसरी सदीमें ढाले गये होंगे । बहुतसे सिक्के तो समुद्रगुप्तके समय के ही मालूम पडते हैं । इनमें से बहुत से सिक्कोंके पीछे द्वि : कितनों के त्रि : ऐसे अक्षर हैं उनसे ज्ञान होता है कि इसजाति के द्वितीय गण तथा तृतीय गणने ढलवाये होंगे । अथवा दूसरी बार व तीसरी बार भिन्न भिन्न गच्छ - ढलवाये होंगे । इसके सिवाय और बहुतसे सिक्क मिले हैं । उनमें एक तरफ कार्तिकेय भगवान का छ मस्तक वाला पुतला बैठाया है तथा 'ब्रह्मण्य देवस्य भा' तथा ' ब्रह्मण्य भगवत : स्व [illegible]न् ' ऐसा लिखा हुवा है । इससे प्रतीत होता है कि ईसा [illegible] पहिले लगभग दूसरी सदीमें भगवान् नाम का कोई यौधेय सरदार ख्याति को प्राप्त हुवा था । पंजाब में बसने वाले आजकल के जोहिया राजपूत प्राचीन यौधेयों की एक जातिमें से [illegible] ऐसा बहुतों का अनुमान है ।

माद्रक जातिका नाम बृहत्संहितामें तथा महाभारत में 'मद्रक' अथवा 'मद्र' नामसे दियाहै। इस देशका मुख्य शहर संगल अथवा शाकल था मिलिन्द पन्हाका जो सागल वही यह शाकल, जाति तथा बाहिक नामसे पहिचानी जातीथी। इस जातिका देश अबभी मद्रदेश इस नामसे प्रसिद्धहै, और वह इरावती (रावी) तथा चन्द्रभागा (चिनाब) नदियों के बीचमें है। माद्रक लोग यौधेय लोगोंके पडोसी थे। एवं पंजाब के मध्यमें रहते थे। इन लोगोंका शाकल पट्ट नगर प्रायः बारीदोआब में इरावती के पूर्व झंग जिलेका चुनिओट वा शाहकोट होगा। अतः विपाशानदीके पूर्वमें यौधेय और पश्चिममें माद्रक रहतेथे। शुतुद्रुनदी विपाशानदी के ऊपर बहाव के बीच का जलंदर दोआब प्रायः समुद्र गुप्तके ही राज्यमें था। इस भाग की सरहद विपाशानदी थी। इससे माद्रक जातिको सचमुच सरहदी जाति कह सकतेहैं।

आभीरजाति को पहिचानना जरा टेढीखीरहै। नासिक में एक पुराना शिलालेख मिलाहै। उसमें आभीर राजाके विषयमें उल्लेख है। आपलोग जानते होंगे कि गुजरात में प्राचीन कालमें बहुतसे अहीर लोग रहते थे। तापीनदी तथा देवगढ़ के बीच का प्रदेश आभीर के नाम से पहिचानाजाताथा। परन्तु समुद्र गुप्तकी नैर्ऋत्य की सरहद तो बटवा तक ही थी और ये लोगतो पश्चिम के किनारे रहते थे। इसलिये हरिषेण कविने इन आभीरों का उल्लेख नकियाहो यह संभवित है। इसी प्रकार वायव्य प्रान्तमें

मिर्जापुर जिले के चुनार के पास के अहरौर विषय में भी हारिषेण कविने कुछ न कहाहो ऐसा प्रतीतहोता है। समुद्र गुप्तके समयका आभीरलोगोंका प्रदेश बेटवा नदीके पश्चिम आहिरवाडके नामसे प्रख्यात होगा। वह झांसी के दक्षिण तथा (भिल्सा) से उत्तर ग्वालियर राज्य में आया हुवा है। सबतरहसे देखनेपर ऐसाही प्रतीत होताहै कि समुद्रगुप्त ने जिन अहीरों को वशमें कर लियाथा वे इसी आहिरवाड के रहने वाले होंगे। अबतक के वर्णन सेयह ज्ञात होता है कि हरिषेण कविने राज्यों के तथा जातियों के नाम भूगोल के आधार पर नंबरवार दिये हैं। प्रारम्भ में नैर्ऋत्य सरहद के मालवोंके विषय में कहा। फिर उसके उत्तर आर्जुनायन लोगों के विषयमें कहा और इसी दिशामें आगेबढकर यौधेय और माद्रकों के विषय में उल्लेख किया। फिर नैर्ऋत्य की तरफ झुककर आभीर लोगोंसे शुरुवात की एवं दक्षिण की सरहद के किनारे किनारे पूर्वकी ओर अपने वर्णन का झुकाव रखा है। इसी इशारे के आधारसे हम के बादकी उसने जतलाई हुई जातियों की पहिचान करसकते हैं। उपर्युक्त आहिरवाड के दक्षिण में विदिशा का देश मालव प्रदेशमें आयाहुवा है। इससे यह ज्ञात होता है कि प्रार्जुन जाति आहिरवाड के पूर्व में वा नैर्ऋत्य में होगी। ऐसा फर्ज करलें कि समुद्र गुप्तके राज्य के दक्षिण तरफ की सरहद नर्मदा नदीतक की थी, तो प्रार्जुन जाति मध्य प्रान्त के नरसिंहपुर जिले में बसतीहोगी ऐसा अनुमान करसकतेहैं लेके-

न अभी यह केवल निरातर्क है इस जातिके निर्णय करने के लिये अभीतक पर्याप्त साधन नहीं मिल सके।

अन्तिम तीन जातियां सनकानिक काक और खरपरिक कौन थीं। इसका भी अभी तक निर्णय नहीं होसका परन्तु यह जातियां कदाचित् मध्यप्रान्तों में प्रार्जुन जाति के पास किंवा मध्य हिन्दुस्तानमें मालव देशके दक्षिण में बसती होंगी। विदिशा के नैर्ऋत्य में पौने तीन कोस दूर पर प्रसिद्ध सांची का बौद्धस्तूप प्रारम्भ के समय में 'काकनाद' नामसे कहा जाता था। इससे 'काक' से शायद कुछ साम्य हो एवंच विदिशाके पासके उदयगिरिका एक शिलालेख मिलाहै उसमें किसी सनकानिक सरदारने कुछ थोडासा नक्षी निकालनेका काम (बक्षीस) इनाम में दिये का लिखा हुवा है। उससे यह कह सकते हैं कि हरिषेण जो सनकानिक नाम देताहै वह इस सांची के प्रदेश के साथ संबन्ध रखता होगा। अन्त में खरपरिक जातिके विषय में ऐसा अनुमान कर सकते हैं कि वे लोग मध्य प्रान्तके सेओनि अथवा मंडला नाम के प्रान्तमें रहते थे। इस प्रकार अनुमान करनेसे समुद्र गुप्तके चारों ओर के हद के विषय का उल्लेख आजाता है।

छठा प्रकरण
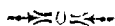
परदेशी प्रजा और समुद्रगुप्त

समुद्रगुप्तने जिन प्रान्तों को जीत लिया था, सरहदके जिन राज्यों को वश किया था, एवं सरहदकी जिन जातियों को अपने

आधीन किया था, उन सब का विचार ऊपर के पृष्ठों में हम कर चुके हैं। अब दूरदूरके स्वतंत्र प्रदेशों के साथ समुद्रगुप्तने जो दोस्ती का सबंन्ध बांधाथा, उसकाभी कुछ विचार हम करेंगे। हरिषेण कविने अपने लेखकी तेंतीसवी पंक्ति में बतलाया है कि समुद्रगुप्तको देवपुत्रोंने शाहिओंने शाहानुशाहिओंने, शकोंने एवं मरुंडोने तथा सिंहलोंनेभी सिर झुकाया था, तथा भेंट वगैरह भेजींथीं। अब ये विविध सत्तायें कौन कौन सी थी इसका विचार करेंगे। भारत में सार्व भौम को ही देवपुत्र कहा जाता था। चीनी भाषा में 'तिन-झे' अर्थात देवका पुत्र कहा है। गान्धारके पुरुषपुरके काबुली कुशान राजाओं के लिये देवपुत्र यह खास इल्काब लगाते थे। महान् कुशान नृपति कनिष्क व हविष्क (हुष्क वा हुक्ष) एवं वासुदेव (वासुष्क) इनको देवपुत्र यह बहुमान का पद दिया हुवा है। मथुरा तथा सांचीसे अनेक लेखों में इसके उदाहरण उपस्थित हैं। "देवपुत्र हुक्षस्य" "देवपुत्र हविष्कस्य....वर्षे" "राजाति राज देवपुत्र शाहि वासुष्कस्य" "देवपुत्र कनिष्कस्य पंचमे वर्षे" वासुदेवके वंशजों के नाम सिक्कों से जाने जासकते हैं। अफगानिस्तान तथा पंजाब से प्राप्त बहुत से सिक्के कनिष्क हविष्क तथा वासुदेव राजाओंके सिक्कोंसे मिलते हैं। बहुतसे नाम तो चीनी नामों की तरह 'मि' 'भु' आदि एक शब्द केभी हैं। इन सिक्कों में से बहुतसे गान्धार वा पुरुष पुरके लोगोंने

ढलवाये प्रतीत होते हैं, तथा कितने ही सिक्कों को महान् कुशान राजाओंने ढलवाया होगा, इनकी राजधानी प्रायः काबुलमें थी। इन कुशान राजाओं में से ही किसी देवपुत्र राजाने समुद्रगुप्त की सत्ता के आधीन हो कर बहुमूल्य भेटें भेजी होंगी। ईसाकी पहिली व दूसरी सदीमें गान्धार के देवपुत्र कुशान नृपतिगण 'शाहि' इल्काब धारण करते थे। ग्यारहवीं सदीतक यह पद उत्तर हिन्दुस्तान में भी व्यवहृत होता था। चौथी सदीमें जो राजा इस इल्काब को धारण करताथा उसका नाम सिक्कों के द्वारा मालूम किया जा सकता है। किदार कुशान राजकुमार अपने नामके साथ सादा 'शाहि' इल्काब लगाते थे। उनके सिक्के शायद समुद्रगुप्त के सम कालीन हों। ऐसे दो सिक्कोंपर निम्न लिखित लेख मिलता है।

ऊपरके तरफ अग्रभाग में राजा का सिर है एवं उसके मुखकी दोनों ओर सस्सनीय राजाओं के बालों न्याईं झाडी जैसे बाल हैं। राजा के मुकुटमें तिहरे गहने हैं। कानमे कुंडल हैं। प्रारंभिक गुप्त लिपिमें "किदर कुशान शाहि" ऐसा खुदा हुवा है अंतिम हि अक्षर राजाकी दहिनी ओर बिलकुल मुखके सन्मुख है।

पिछली तरफ-अग्निकुण्ड है उसके पास दो पुरुष नंगी तलवार लिये खडे हैं। कुण्डके नीचे तीन अंक हैं। २३९, तथा २३९ ऐसा प्रतीत होता है कि इस्वी सन २९७ वा ४ ७ का है।

इन प्रकारों से ज्ञात होता है कि शाहि वंशके साथ समुद्रगुप्त का संबन्धथा (ऐसा हरिषेणने भी लिखा है) उस शाहिवंशके ही ये सिक्के होंगे। ये सिक्के पश्चात काश्मीरमेंभी चलने लगे थे।

क्यों कि काश्मीरके राजाने काबुल के शाहि वंशमें विवाह किया था। किदार का समय ईसा की पांचवीं सदीका है। किदार शब्द चीनी कि--टो--लो शब्दसे मिलताहै। छोटे युएचि (कुशानो) का सरदार किटो लो लगभग ४३० ईस्वीमें पुरुषपुरमें विग्रह कर रहाथा। समुद्रगुप्तके समयमें कुशान का देवपुत्र वंश उत्तरीय पंजाब में राज्य कर रहाथा। अर्थात शाहि किदार (कि--टो--लो) इसके दक्षिण लगभग कन्दहार के आगे था। शायद यह शाहि किदार राजकुमार (शाहानुशाहि) का इल्काब धारण करने वाले राजाओं के आधीन रहे होंगे, ऐसा प्रतीत होता है। शाहानुशाहि (राजाओं के राजा) के साथ समुद्रगुप्तका संबध था ऐसा कवि हरिषेण लिखता है। इससे यह प्रतीत होता है कि ईस्वीसन ३०९ से ३८०–८१ तक ईरान का राज्यकर्त्ता सस्सनीय नृप दूसरा सपोर (शापुर) ही शाहानु शाहि हो। क्योंकि यह समुद्रगुप्तका समसामयिक है। इस द्वितीय शापुरका ऑकसस के पूर्वज कुशान राजकुमारों के साथ गाढ संबन्ध था। शापुर के पूर्व हो गया दूसरा हार्मझद ने किसी कुशान राजा की बेटी से शादी की थी। इस शापुर ने ३५९ ईस्वी में टाइग्रिस नदीपर स्थित अमिडा (डायर बेकिर) को घेर लिया था। उस समय समुद्रगुप्त का आधा राज्यकाल बीत चुका था। इस घेरेमें हमारे देशके हाथियोंके तथा कुशान चमूके ओरसे रोमन लोगों को हार खानी पडी थी। हरिषेण कवि जिस

राजाके इल्काब को (शाहानुशाहि) कहता है वह राजा ईरान का महाराजा नहोगा। परंतु ऑकसस के कुशानोंका राजा था।

शक अवश्य परदेशीथे। वे कन्दहार के पथसे यहां आये थे। वे ड्रॅगियाना में रहतेथे। हेल्मण्ड नदी के पास के प्रदेशका यह पुराणा नामहै। उसको शकस्तीन भी कहाहै। एवं मथुरा के तथा उत्तरहिन्दके क्षत्रप असलमें ईरान के थे, ऐसा भी कोई लोग कहते हैं। वे मथुरा के शक-क्षत्रप कहलाते हैं। मथुरा समुद्र-गुप्तके राज्यमें था, पर हारिषेण जिन विदेशीय शकों क विषय में कहता है वे यह क्षत्रप नहीं थे। कदाचित् शक लोग समुद्रगुप्त के समयमें सीस्तान (कन्दहार) में तथा सिन्धु के आसपास रहते होंगे। परन्तु सीस्तान ईरान का भाग था एवं हरिषेण भी सीस्तान के शक राजा के विषय में कहताहो ऐसा नहीं प्रतीत होता। बृहत्संहितामें बतलायाहै कि शकलोग हिन्दके पश्चिममें अपरांतक म्लेच्छ पारत (पारद) शातिक आदिके साथ रहते थे। मनुने शकों को द्रविडों के साथ गिनाया है।

पौण्ड्रकाश्चौड्रद्रविडाः कांबोजा यवनाः शकाः।

पारदापह्लवाश्चीनाः किराता दरदाः खशाः॥ ४४ ॥ १० अ.

एवं हरिषेण के बतलाये हुव शक उत्तर हिन्दके नहीं परन्तु पश्चिमीय हिन्दमें रहते थे। यह शकराज शक क्षत्रपोंमेंसे ही काइथा। ये लोग ईसाकी पहिली सदीके आखिरसे लेकर चौथी सदी के आखिर तक पश्चिम हिन्दके सत्ताधीश थे। मालवा सिन्ध

कच्छ काठियावाड गुजरात एवं उत्तर कोकण का इसमें समावेश होता था। ये राजा पश्चिम के क्षत्रप कहलाते थे। उनकाभी वर्ष शकही में माना जाताथा। प्रथम क्षत्रप नहपा अंध्रक शातकर्णी पर विजय प्रप्त कियाथा। उसकी स्मृति अपना 'शक' शुरु कियाथा। समुद्रगुप्तने मालवा तक चढाई कीथी। अतः उनका पश्चिम के शक क्षत्रपों के साथ संबन्धथा। २६ वां पश्चिमका क्षत्रप राजा रुद्रसेन था। उसके सिक्का साल इ. स. ३४८ व ३६० और ३७६ हैं। इससे प्रतीत होताहै कि समुद्र गुप्त को सिर झुकाकर इसी ने उपहार भेजेथे।

अब मरुण्ड राजा का विचार करेंगे। गुप्त शक १९३ तथा १९७ के शिला लेख नागोध राज्य के 'खोह' गांवसे प्राप्त हुवे हैं उसमें 'मरुडदेवी' अथवा 'मरुंडस्वामिनी' का उल्लेख है उससे यह प्रतीत होता है कि कैमूर पूर्वत के आगे रीवां के पर्वतीय प्रदेशों में अथवा विन्ध्या पर्वतमें अर्थात् उत्तरीय दक्षिण में चाहे फिर वे छोटे नागपुर में रहते हों। यह रानी नागोध के आगे उंच्छकल्प के महाराज जयनाथ की (रखेल) उपपत्नी थी यह मरुण्ड जाति की थी सो इसके नाम से ही प्रतीत होताहै, एव जेन लोगों का पुराण हरिवंश ६२७ ईस्वीमें जिनसेनने लिखाहै। उसमें ८५ कविताओं में लिखाहै कि "फिर पृथ्वीपर ४० वर्ष तक केवल मरुण्ड ही राज्यचलावेंगे। उसके बाद ३० वर्ष तक पुष्पमित्र (पुष्यमित्र) और ६० वर्ष तक वसुमित्र तथा अग्निमित्र राज्यचलावेंगे"। एवं पार्श्वाभ्युदयमें कहा है कि वासवदत्ता का प्रियपात्र वत्सराज

मुरुण्ड जातिका था। जैन पुराणोंसे इतना तो प्रतीत होता है कि मुरुण्ड लोग ४० वर्ष तक इस देश के शासक रहेथे। ईसाकी सातवीं सदीमें यह बात प्रचलित थी। हरिषेण के बतलाये हुएही यह मुरुण्ड "मरुण्ड" ही थे यह नहीं कहसकते। ऐसाभी कहते हैं कि मुरुण्ड लोगही 'लंपाक' थे वे काबुल नदीके उत्तर की ओर के किनारे के लम्पक अथवा लम्घान नामक छोटे से प्रदेशमें रहते थे। किस मरुण्डराजाने समुद्रगुप्त से हार मानी थी यह नहीं कह सकते।

अब सिंहलद्वीप के लोगोंका समुद्रगुप्त के साथ संबन्ध था, यह कहना बाकी रहा। हिंदुस्थानके ऊपर इतनी बड़ी सत्ता चलाने वाले समुद्रगुप्त से सिंहाली लोग भी भयभीत थे। यह स्वाभाविकही है। अतः ३६० ईस्वीमें सिंहलद्वीपके राजाके साथ समुद्रगुप्त का व्यवहार चलाथा। सिंहलद्वीप का राजा बौद्ध था। उसका नाम श्री मेघवर्ण था। उसने ईस्वीसन ३५२ से ३७९ तक राज्य कियाथा। समुद्रगुप्त के 'हीरक मण्डित' सिंहासन को नमन करनेके लिये एवं बुद्ध गयाके पवित्र वृक्ष के उत्तरमें स्थापित मठ के दर्शनार्थ उसने दो साधु भेजे थे। एक उसका भ्राता था। इन के योग्य प्रबन्ध यहां नहीं हुआ अतः वे अप्रसन्न होकर सिंहलद्वीपको वापस गये। वहां पहुंच मेघवर्ण के सामने शिकायत की कि हिंदुस्थान में रहने लायक शायद कोई स्थान नहीं नहीं मिला। यह सुन मेघवर्ण को बहुत बुरा लगा। यात्रियों के आराम के लिये कोई विश्राम स्थान होना चाहिये। ऐसा विचार कर एक मठ बंधवाने का उसने निश्चय किया। लंका का (सिंहल

द्वीपें) सुवर्ण प्रसिद्ध है । उसने सोनेके थाल भरके समुद्रगुप्त के पास भेजे । एवं भारत भूमिमें मठ बंधवाने की आज्ञा मांगी । परदेशी प्रजाकी ओरसे अपना इतना बड़ा सन्मान देखकर वह सन्तुष्ट हुवा । एवं मठनिर्माण की उसको आज्ञा मिलगई । बहुत विचार के बाद बुद्ध गया के बोधिवृक्ष के समीपही उत्तर की ओर उसने मठ बंधवाना निश्चित किया । उसको तीन मंजल छःखण्ड व तीन बुर्ज थे । एवं उसके आसपास ३० से ४० पाद ऊंची मजबूत भीतथी । इसका चित्र आलेख बहूमूल्य तथा अच्छे रंगों से किया गया था एवं उसका नक्शाकाम अपूर्व कलासे परिष्कृत था । बुद्ध भगवान् की सोना वरूपाकी मूर्ति बनवाकर उसमें बहू मूल्य हीरामाणिक जडाकर वहा पधरवाई गई । इस समय वहां एक छोटासा टीला ही दीख पडता है । हा शोक । काल के पंजे से कौन बचा है ।

सातवां प्रकरण

अश्वमेध और अन्त

समुद्रगुप्तकी चढाइयां इतने विस्तृत प्रमाणमें थी । लगभग ४५ वर्ष के राज्यकालमें उसने अपनी सत्ता बहुत दूरतक फैलादी थी । उत्तरमें हिमालय से लेकर दक्षिणमें नर्मदा के उत्तरीय तट तक, एवं पूर्वमें हुगलीसे लेकर पश्चिममें यमुना तथा चंबल तक उसके राज्य का विस्तार था । इसके सिवाय आसाम तथा गंगा

मुख के आगे के हिमालय के दक्षिणभाग के सरहद के राज्य तथा मालवा राजपूताने के सरहद की जातियोंने उसकी सर्वोपरि सत्ता स्वीकार की थी। उसने उत्तर हिन्दके ९ राजाओं को आधीन कर अपने साम्राज्य से उनको जोड दिया था। नर्मदा नदी के आगेकी तथा विन्ध्य पर्वत वासिनी जंगली जातिओं के सर्दारोंको उसने अपने काबू करलिया था। दक्षिण हिन्द के १२ राज्योंने कुछ काल तक उसको सम्राट मानाथा। वायव्य कोने के सरहद के पासके काबुल तथा कन्दहार देश के कुशान राजाओंने तथा सिंहलद्वीप के राजाने उसके दर्बार में बहुमूल्य भेटें भेजी थीं। इस से प्रतीत होता हैं कि ईसासे तीन सौ वर्ष प्रथम अशोकने जितना राज्यविस्तार किया था उससे भी अधिक छः सौ वर्ष बाद समुद्र गुप्तने अपना राज्य बढ़ाया था, अतएव अंग्रेज इतिहासकार उसे ' हिन्दुस्थान का नेपोलियन ' कहते हैं। इसमें कुछभी आश्चर्य नहीं। सच पूछो तो नेपोलियन से डेढ़ हजार वर्ष पहिले समुद्र गुप्त हो गया है अतः हमतो नेपोलियन कोही फ्रान्सका समुद्र गुप्त कहेंगे। समुद्रगुप्त भारत का राजाधिराज था। कोई भी राजा सार्वभौम होना चाहता तो वह अपनी सत्ता जमाने के लिये अश्वमेध यज्ञ करता यह पुरानी परंपरा चली आई है। पाण्डवोंने युद्धमें विजय प्राप्तकर अश्वमेध यज्ञ किया था। कोईभी आर्य राजा जो कि सार्वभौम पदको प्राप्त हुवा हो अश्वमेध यज्ञ किये बिना अपने जीवनको सार्थक नहीं समझता था। इसी नियम के अनुसार समुद्र गुप्तनेभी अश्वमेध यज्ञ करना चाहा।

ईसासे दो सौ वर्ष पहिले पुष्पमित्र (पुष्यमित्र) ने अश्वमेध यज्ञ किया था, फिर पांच सदी बाद समुद्र गुप्तने भी यही यज्ञ किया था, इस यज्ञ में अमुक रंग का घोडा अमुक क्रिया करके पवित्र किया जाता था, फिर एक वर्ष तक भारत की प्रदक्षिणा करने को छोड़ देते। राजा या उसका प्रतिनिधि फौज लेकर उसके पीछे पीछे घूमता, जब वह परराज्यकी हद में दाखिल होता तो वह नृपति युद्ध करे अथवा शरण में आवे। जिन प्रदेशोंमें होकर घोड़ा जाता उन प्रदेशों को जीत लेनेमें अथवा आधीन करने में इस अश्व को छोड़ने वाला राजा अथवा उस का प्रतिनिधि सफलता प्राप्त करता, तब वह विजयी होकर पीछे लौटता और पराजित राजाओं को अपने साथ ले आता। अगर वह निष्फल होता तो उसका बड़ा अपयश होता एवं उसका प्रहास होता। विजयी होकर राजा पीछे आता तब बड़ा उत्सव मनाया जाता तब इस घोडे का अग्निमें होम कर देते थे। इस समय ब्राह्मणों को करोड़ों सोने के मोहेरोंकी दक्षिणा देते। इस क्रिया के स्मरण करने के लिये उस समयके सिक्के तथा खुदवाये हुवे शिला लेख अब प्राप्त हुवे हैं। उस परसे ऐसा अश्व-मेध समुद्र गुप्त ने किया था यह साबित हो सकता है। अयोध्या तथा नेपाल देश की सरहद पर आये हुवे खेरी जिलेके खेरी गढ़ नामक प्राचीन किले के पासही एक नक्षीका काम किया हुवा घोड़ा मिला है वह लखनौ के अजायब घर में रख दिया गया है। उस पर ' समुद्र गुप्तकी उदार भेट ' इसतात्पर्यका एक लेख है। इस से प्रतीत होता है कि अयोध्याके दक्षिणकी ओर समुद्र

गुप्तने अंश्वमेघ यज्ञ किया होगा। उस समयके ब्राह्मणों को दान में दिये गये सिक्के मिले हैं। उसकी पीठ पर पालक विना का एकाकी अश्व खुदा हुवा है। दूसरी तरफ हाथ में (अनाज की बाली लिये) हुवे एक स्त्री खड़ी है। इस मुद्रा के एक तरफ (पृथिवीं विजित्य दिवं जयत्य प्रतिवीर्यः राजाधिराजः समुद्र गुप्तः) ऐसा उल्लेख है। और दूसरी तरफ (अश्वमेध पराक्रमः) ऐसा लिखा है। समुद्र गुप्तने यह अश्वमेघ लगभग ३७० ईस्वी में किया होगा।

पहिले चंद्रगुप्त के समय में राजधानी पाटलिपुत्र थी। आरंभमें समुद्रगुप्तने भी यही राजधानी रखीथी। इसी नगरी के पश्चिम से उसने अपनी चढ़ाइयों की शरुवातकीथी। पीछेसे वह इस योग्य न जंची हो तब अयोध्या अथवा कौशांबी को अपनी राजधानी बनाई होगी। गयाजीसे समुद्रगुप्तके नामका दानपत्र मिलाहै। उसमें समुद्रगुप्तने अपने राज्य के नववें वर्ष किये हुएदान का वर्णन लिखाहै। इसप्रकार अयोध्या के दरबारसे यह दान किया गया था। इसपर जो मुद्रा लगाई है वह समुद्रगुप्त के समय कीही है इसका निश्चयभी दूसरे दानपत्रों के प्राप्त होने पर अवलंबित है।

समुद्रगुप्त की मृत्युकब हुई थी वह अभी तक निश्चित नहीं होसका। लेकिन बहुत वर्षोंतक जियाथा। और लगभग ५० वर्ष तक उसने राज्य किया था। इससे ईसा के ३७५ वें वर्ष वह माराहोगा। मृत्युके समय अपनी राणी दत्तदेवी का पुत्र द्वितीय चन्द्रगुप्त को अपना वारस बनाया था। चन्द्रगुप्त विक्रम इस

नामसे प्रसिद्ध था। उसकी स्त्री का नाम ध्रुवदेवी था। उसने पहिली सवारी बंगाल पर की थी। फिर मालवा तथा काठियावाड़ प्रान्तमें होकर अरबी समुद्रतक गयाथा। वहां ३८८ ईस्वी में उसने क्षत्रपों को हराया था। इस समय काठियावाड़में सत्यसिंह का बेटा क्षत्रप रुद्रसिंह था। उसको पराजित कर तथा जानसे मार उसका राज्य अपने राज्यमें मिला लिया था। इस के निधन के बाद इसका बेटा प्रथम कुमार गुप्त ४१३ ईस्वी में सिंहासनासीन हुवा। उसकी स्त्रीका नाम अनन्तदेवी था। उसने अश्वमेध यज्ञ किया था। उसके समय में वायव्य कोनसे आकर हूण लोगोंने लूट फाट मचाई थी। ४४५ ईस्वी में वह मर गया। उसके बाद उसका पुत्र स्कन्दगुप्त गद्दीनशीन हुवा। उसने ४४६ ईस्वी में काठियावाड़ में गिरनार पर्वत के पास का सुदर्शन तलाव सुधरवाया था, उस के समय में भी हूण लोगोंने लूटफाट मचाई थी, लेकिन उनको उसने हराया था, परन्तु ४७० ईस्वी में हूण लोगोंके दूसरे हुमले के सामने वह टिक न सका ४८० ईस्वी में वह मर गया, सचमुच उसके साथ गुप्त वंश का अन्त हो गया, तो भी उसके वंशज बहुत समय तक पूर्व में बहुत से प्रान्तों पर अपना राज्य चलाते थे। स्कन्दगुप्त के साठ वर्ष बाद परमार्थ नामक एक बौद्ध लेखकने 'वसुबंधु चरित्र' नामक पुस्तक लिखा था, उसमें उसने किसी एक राजा को अयोध्या का विक्रमादित्य राजा बतलाया है। ह्वएनत्संगने उसको श्रावस्ती का

विक्रमादित्य कहा है। परमार्थ की पुस्तक देखने से ऐसा प्रतीत होता है, कि समुद्रगुप्तने पुरुष पुर (पेशावर) से वसु बन्धु नामक विद्वान् बौद्ध साधुको अपने पास बुलवाया था। उसके वक्तृत्व तथा विद्वत्ता की समुद्रगुप्त पर बहुत अच्छी असर हुईथी।

स्कन्द गुप्त के पश्चात् उसकी (विमाता का बेटा) सापत्न भाई ४८० ईस्वीमें गद्दीनशीन हुवा था। उसकी स्त्री कानाम वत्सदेवी था उसके बाद लगभग ४८५ ईस्वी में उसका बेटा नरसिंह गुप्त बालादित्य राजा हुवा। उसकी स्त्री का नाम महालक्ष्मी देवी था उसके बाद उसका बेटा दूसरा कुमारगुप्त ५३० ईस्वी के लगभग गद्दीपर बैठा। इस दरम्यान तोरमाण हूण लगभग ४९० ईस्वी से ५२० तक एवं मिहिरकुल हूण लगभग ५१० ईस्वी से ५४० तक अमल करते थे। गुप्तवंशका अन्तिम राजा द्वितीय जीवित गुप्त ईस्वीसन की आठवीं सदी के प्रारंभमें राजपद भोग रहाथा, सातवीं सदीमें आदित्यसेन नामक राजाने अश्वमेध यज्ञ किया था, ऐसा पता लगा है। मालवा के पश्चिम भागमें ४८४ ईस्वीसे ५१० तक राज्य करने वाले बुद्धगुप्त और भानुगुप्त राजाओं के विषय में कुछ चिह्न मिलते हैं लेकिन वे हूण लोगोंके अवश्य आधीन होंगे ऐसा प्रतीत होता है लेकिन यह सत्य नहीं प्रतीत होता। यह गुप्त वंशका संक्षिप्त इतिहास है।

अन्तमें परमात्मासे हम यही प्रार्थना करते हैं कि जिस भरतखण्ड में समुद्रगुप्त के समान चक्रवर्ती महाराजा उत्पन्न हुवे हैं उस भरतखण्ड की सदा जय हो।

चित्र परिचय

पहला चित्र

यह स्तंभ विदिशामें हैं ।

दूसरा चित्र

इस चित्रमें गुप्त वंशकी अनेक मुद्रायें दी हैं । समुद्रगुप्तके सिक्कों के विषय में यहां लिखते हैं ।

उसकी सुवर्ण की ३० मुद्रायें मिली हैं । वह बड़ा भारी गवैया था । इस में समुद्रगुप्त एक उच्च आराम पीठ पर बैठा हुवा है । पैर नीचे की तरफ हैं । अपने अंकमें वीणाको लेकर बजा रहा है । नीचे बडा बाजठ है । उस के सामने 'सि' अक्षर है । मुद्राके कोने पर ' महाराजाधिराज श्री समुद्रगुप्तः ' ऐसा लिखा है । मुद्राकी दूसरी तरफ देवी अपने वाम हस्तमें पाश तथा दहिने हाथमें रणसिंगा लेकर बैठी है । मुद्रा के कोने पर ' समुद्रगुप्त ' लिखा हुवा है । ऐसे सिक्के राजपूताने के अल्वर से प्राप्त हुवे हैं । इनका भार ११५ से १२० चना का है।

समुद्रगुप्त महान् योद्धाथा ऐसे बतलानेवाले तीन प्रकार के सिक्के मिले हैं । एकमें समुद्रगुप्त अग्निकुण्ड में धूप डालता है तथा दहिने हाथमें भाला लेकर खड़ा है । दहिने गरुड ध्वज है उसके नीचे 'समुद्र' ऐसा लिखा है । किनारेपर ' समरशत विततविज ' लिखा है । 'समरशतविततविजयो जितारिपुरोऽजितो देवो जयति' ऐसा

होगा। सिक्के के दूसरी ओर कमलपर पैर रख के गद्दीनशीन देवी (लक्ष्मी) बैठी हुई है। एक तरफ (पराक्रम) यह शब्द लिखा है। किसी में देवी के हाथमें रणसिंगा है एक सिकेमें समुद्रगुप्त धनुष को टेक कर दहिने हाथमें बाण लिये खड़ा है। दहिने हाथ की नीचे 'समुद्रगुप्तो देवो विजितावनिरप्रतिरथो विजित्यक्षितिम्' इस प्रकार का होगा, सिक्के की दूसरी ओर लक्ष्मी देवी रणसिंघा लेकर बैठी है। इस के एक तरफ 'अप्रतिरथ' लिखा है। कहीं पर सैनिक अर्ध चन्द्राकारवाली ध्वजा को लेकर खड़ा है। दूसरी तरफ लक्ष्मी पाश तथा रणसिंघा लेकर खड़ी है। 'कृतान्त परशु' ऐसा लिखा है।

समुद्र गुप्त के दिग्विजय तथा अश्वमेध यज्ञ की सूचक भी मुद्रा मिली है। उसका भार ११७ चनेके बराबर है। एक तरफ घोड़ा खड़ा है। उसके पास कोई रखवाल नहीं है सामने अग्नि कुण्ड है। उस पर यूप है। उसको बांधी हुई ध्वजा घोड़े के पीठपर फरफरा रही है। घोडे के पेटके नीचे 'सि' लिखा है। सिक्के के कोनेपर (पृथिवीं विजित्य दिवं नयत्य प्रतिवार्य वीर्यः राजाधिराजः समुद्र गुप्तः) लिखा है। मुद्राकी दूसरी तरफ पटराणी दहिने हाथ में चौरी पकड़कर दहिने कन्धेपर रखे हुवे है। वाम हस्त लटकता रख कोई वस्तु लेकर कमल पर खड़ी है उसके सामने ध्वजादण्ड है। सिक्के के दहिने कोने पर 'अश्वमेध पराक्रमः' लिखा है।

परिशिष्ट अंक १

हरिषेण का शिलालेख

आजकलके वायव्य प्रान्तों का मुख्य शहर इलाहाबाद (प्रयाग) के किले के भीतर ३५ पाद ऊंचा गोल (वर्तुल) एक खंभा है । वह ईसासे तीनसौ वर्ष पहिले अशोकने खड़ाकरवाया था । उसपर हरिषेण कवि का जो लेख अंकित है । वह इसप्रकार है

१. [यः] कुल्यैः स्वै........ ..आतस........................
....
२. य (?) स्य (?)..
.............................[॥] १
३. पुं. (?) व...
त्र...
४. स्फा (?) रद्व ? ....क्षः स्फुटो
द्धव (वं ?) सित.........प्रवितत................[॥] २.
५. यस्य प्रज्ञानुषंगोचितसुखमनसः शास्त्रतत्त्वार्थभर्तुः [– –] स्तब्धो
[⏑ – – ⏑] निं [⏑ ⏑ ⏑ ⏑ –] नोच्छ्रि [– – ⏑ – –]
६. [स] त्काव्यश्रीविरोधान्बुधगुणितगुणाज्ञाहतानेव कृत्वाविद्वल्लोके वि
[– –] स्फुटबहुकविता कीर्तिराज्यं भुनक्ति [॥] ३.
७. [आ] र्यो हीत्युपगुह्य भावपिशुनै रुत्कर्णितै रोमभिः सभ्येषुच्छ्वसितेषु
तुल्यकुलजम्लानाननोद्वीक्षितः
८. स्नेहव्यालुलितेन बाष्पगुरुणा तत्त्वेक्षिणा चक्षुषा यः पित्राभिहितो निरीक्ष्य
निखि [लं पाह्येव] म [सु] र्वीमिति [॥] ४.
९. [दृ] ष्ट्वा कर्म्माण्यनेकान्यमनुजसदृशान्याद्भुतोद्भिन्नहर्षाभावैरास्वादय
[– ⏑ ⏑ ⏑ ⏑ ⏑ ⏑ – – ⏑ – – ⏑] [के] चित्

१०. वीर्योत्तप्ताश्च केचिच्छरणमुपगता यस्य वृत्ते प्रणामेप्यर्ते (?)
[⏑ ⏑ ⏑ ⏑ ⏑ ⏑ ⏑ ⏑ ⏑] [॥] ५.

११. संग्रामेषु स्वभुजविजिता नित्यमुच्चापकाराः श्वःश्वो मानप्र [⏑ ⏑ ⏑ ⏑ – – ⏑ – – ⏑– –]

१२. तोषोत्तुंगैः स्फुटबहुरसस्नेहफुल्लैर्मनोभिः पश्चात्तापं व [⏑ ⏑ ⏑ ⏑ – – ⏑] म (मं ?) स्याद्रस (?) न्त [म् ?] [॥] ६.

१३. उद्वेलोदितबाहुवीर्यरभसादेकेन येन क्षणादुन्मूल्याच्युतनागसेनग [⏑ ⏑ – – – ⏑ – – ⏑ –]

१४. दण्डैर्ग्राहयतैव कोटकुलजं पुष्पाह्वये क्रीडता सूर्ये ने [⏑ ⏑ – ⏑ –] तट [⏑ – – – ⏑ – – ⏑ –] [॥] ७.

१५. धर्म्मप्राचीरबंधः शशिकरशुचयः कीर्तयः सप्रताना वैदुष्यं तत्त्वभेदी प्रशम [⏑ ⏑ ⏑] कु [–] य क [⏑] मु (?) त [– ⏑] तार्थ (?)

१६. अध्येयः सूक्तमार्गः कविमतिविभवोत्सारणं चापि काव्यं को नु स्याद्योस्य न स्याद्गुणमतिविदुषां ध्यानपात्रं य एकः [॥] ८.

१७. तस्य विविधसमरशतावतरणदक्षस्य स्वभुजलबलपराक्रमैकबन्धोः पराक्रमांकस्य परशुशरशंकुशक्तिप्रासासितोमर–

१८. भिंडिपालनाराचवैतस्तिकाद्यनेकप्रहरणविरूढाकुलव्रणशतांकशोभासमुदयोपचितकांततरवर्ष्मणः

१९. कौसलकमहेन्द्रमहाकांतारकव्याघ्रराजकौराळकमंटराजपैष्टपुरकमहेन्द्रगिरिकौट्टूरकस्वामिदत्तैरंडपल्लदमनकाञ्चेयकविष्णुगोपावमुक्तक—

२०. नीलराजवैंगेयकहस्तिवर्म्मापालक्ककोग्रसेनदैवराष्ट्रककुबेरकौस्थलपुरकधनंजयप्रभृतिसर्व्वदक्षिणापथराजग्रहणमोक्षानुग्रहजनितप्रतापोन्मिश्रमहाभाग्यस्य

२१. रुद्रदेवमतिलनागदत्तचंद्रवर्म्मागणपतिनागनागसेनाच्युतनन्दिबलवर्म्माद्यनेकार्य्यावर्तराजप्रसभोद्धरणोद्वृत्तप्रभावमहतःपरिचारकीकृतसर्व्वाटविकराजस्य

२२. समतटदवाककामरूपनेपालकर्तृपुरादिप्रत्यंतनृपतिभिर्मालवार्जुनायनयौधे- यमाद्रकाभीरप्रार्जुनसनकानीकाकखरपरिकादिभिश्च सर्व्वकरदानाज्ञाकरण- प्रणामागमन—

२३. परितोषितप्रचंडशासनस्य अनेकभ्रष्टराज्योत्सन्नराजवंशप्रतिष्ठापनोद्भूत- निखिलभ [भुव] नाविच [र] णशांतयशसः दैवपुत्रशाहिशाहानुशा- हिशकमुरुंडैः सैहळकादिभिश्च

२४. सर्व्वद्वीपवासिभिरात्मनिवेदनकन्योपायनदानगरुत्मदंकस्वविषयभुक्तिशा- सन[या] चनाद्युपायसेवाकृतबाहुवीर्यप्रसरधरणिबंधस्य प्रि (पृ)थिव्या- मप्रतिरथस्य

२५. सुचरितशतालंकृतानेकगुणगणोत्सिक्तिभिश्चरणतलप्रमृष्टान्यनरपतिकीर्तेः- साध्वसाधूदयप्रलयहेतुपुरुषस्याचिंत्यस्य भक्त्यवनतिमात्रग्राह्यमृदुहृदय स्यानुकम्पावतोऽनेकगोशतसहस्रप्रदायिनः

२६. कृपणदीनानाथातुरजनोद्धरणस (म) न्त्रदाक्षाद्युपगतमनसः समिद्धस्य विग्रहवतो लोकानुग्रहस्य धनदवरुणेन्द्रान्तकसमस्य स्वभुजबलविजि- तानेकनरपति विभवप्रत्यर्पणानित्यव्यापृतायुक्तपुरुषस्य

२७. निषितविदग्धमतिगांधर्व्व ललितैर्व्रीडितात्रिदशपतिगुरुतुंबुरुनारदादेर्विद्व- ज्जनोपजीव्यानेककाव्यक्रियाभिः प्रतिष्ठितकविराजशब्दस्य सुचिरस्तो- तव्यानेकाद्भुतोदारचरितस्य

२८. लोकसमयक्रियानुविधानमात्रमानुषस्य लोकधाम्नो देवस्यमहाराजश्री- गुप्तप्रपौत्रस्य महाराजश्री घटोत्कचपौत्रस्य महाराजाधिराजश्री चन्द्र- गुप्तपुत्रस्य

२९. लिच्छविदौहित्रस्य महादेव्यां कुमारदेव्यामुत्प (त्प) न्नस्य महाराजा- धिराजश्री समुद्रगुप्तस्य सर्व्वपृथिवीविजयजनितोदयव्याप्तनिखिलावनि- तलां कीर्तिमितस्त्रिदशपति

३०. भवनगमनावाप्तललितसुखविचरणामाचक्षाण इव भुवो बहुरयमुच्छ्रितः

स्तम्भः [।] यस्य । प्रदानभुजविक्रमप्रशमशास्त्रवाक्योदयैरुपर्युपरि-
सञ्चयोच्छ्रितमनेकमार्गं यशः

३१. पुनाति भुवनत्रयं पशुपतेर्जटान्तर्गुहानिरोधपरिमोक्षशीघ्रमिव पान्डु
गांगं प [यः] [॥] एतच्च काव्यमेषामेव भट्टारकपादानां दासस्य
समीपपरिसर्पणानुग्रहोन्मीलित मतेः

३२. खाघटपाकिकस्य महादंडनायकध्रुवभूतिपुत्रस्य सांधिविग्रहिककुमारामा-
त्यम [हादंडनाय] क हरिषेणस्य सर्व्वभूतहितसुखायास्तु । (॥)

६३. अनुष्ठितं च परमभट्टारकपादानुध्यातेन महादंडनायकतिलभट्टकेन ।
(॥)

परिशिष्ट अंक २

एरण का शिलालेख

मध्यप्रान्त के सागर जिल्हे में खुराई (तहसील) के वायव्य दिशाकी ओर ६—७कोस की दूरी पर बीना नदी के वाम तटपर स्थितएरण गांव में (प्राचीन ऐरिणिक) लालरंग का चौकोना पत्थर लगभग १८७६—७७ में प्राप्त हुवा था । उसपर समुद्रगुप्त के नाम का एक शिलालेख है । इस समय कलकत्ते के अजायब घर में यह रख दिया है । उसका लेख इस प्रकार का है । (१ से ६ पांक्ति त्रुटित है । इतने में १ श्लोक एवं दूसरे श्लोक का प्रथम चरण गुम हो गया है)

७. [— — ⏑ — ⏑ ⏑ ⏑ — ⏑] सुवर्णदाने

८. [— —] रिता नृपतयः पृथुराघवादयः [॥] २

९. [– –] बभूव धनदांतकतुष्टिकोपतुल्यः

१०. [◡–◡] मनयेन समुद्रगुप्तः [।]

११. [– –] प्य पार्थिवगणस्सकलः पृथीव्याम्

१२. [– –] स्त [स्व ?] राज्यविभवद्धृतमास्थितोभूत [॥] ३

१३. [– –] न भक्तिनयविक्रमतोषितेन

१४. [यो] राजशब्दविभवैरभिषेचनाद्यैः [।]

१५. [– –] नितः परमतुष्टिपुरस्कृतेन

१६. [– –◡] वो नृपतिरप्रतिवार्य्यवीर्यः [॥] ४

१७. [– –] स्य पौरुषपराक्रमदत्तशुल्का

१८. [हस्त्य] श्वरत्नधनधान्यसमृद्धियुक्त [।]

१९. [– –] म् गृहेषु मुदिता बहुपुत्रपौत्र–

२०. [सं] कामिणी कुलवधुः व्रतिनी निविष्ठा [॥] ५

२१. [यस्] योर्जितं समरकर्म्म पराक्रमेद्धाम्

२२. [– –] यशः सुविपुलमपारबंभ्रमीति [।]

२३. [– –] णि यस्य रिपवश्च रणोर्जितानि

२४. [स्व] प्रान्तरेष्वपि विचिन्त्य परित्रसन्ति [॥] ६

२५. [– – ◡ – ◡ ◡ ◡ – ◡ ◡ – ◡ – –] [–] म (?) स्वभोगनगरैरिकिणप्रदेशे [।]

२६. [– – ◡ – ◡ ◡ ◡ – ◡ ◡ – ◡ – –] [सं] स्थापितस्स्वयशसः परिबृंहना (णा) र्थम् [॥] ७

२७. [– – ◡ – ◡ ◡ ◡ – ◡ ◡ – ◡ ◡ – –] [– – ◡] वो नृपतिराह यदा [– – –] [।]

शिला लेखका शेष भाग टूटनेसे गुम हो गया है ।

परिशिष्ट अंक ३

गया का ताम्रपत्र

बंगाल इलाके के गया प्रान्तका मुख्य शहर गया है। उसमें १८८१ ईस्वीमें समुद्रगुप्त के नामका ताम्रपत्र मिलाहै। वह ८ तसु लंबा एवं ७½ तसु चौडा है। ताम्रपत्र की बांई तरफ वंव-गोल मुद्रा चिपकाई है। इस मुद्राका नाप २½ ३½ तसु है। उसके सिरपर तीन लकीरों का लेख पंक्तियां बिलकुल घिसगई हैं। केवल पांचवीं पंक्तिके अन्तमें सम (मु) द्रग (गु) प (प्तः) ऐसा अस्पष्ट बांचा गया है। जिस प्रकार सर्व वर्मा के अशीर गढ़की मुद्रापर एवं हर्ष वर्धन की शोणपथकी मुद्रापर संपूर्ण वंशावली ही अंकित है। इसीप्रकार इस मुद्रापर भी समुद्रगुप्त की वंशावली ही खुदवाई होगी। मुद्राके साथ ताम्रपत्र का वजन दो तोला वा दो आधपाव का होगा। संपूर्ण ताम्रपत्र संस्कृत गद्य में उल्लिखित है। समुद्रगुप्तने अपनी अयोध्या राजधानी में राज्यका-लके ९ वें वर्षमें ईस्वी ३२९ में वैशाख मासकी १० वीं तिथिमें रेवतिका गांव का दान किसी ब्राम्हण को कियाहै। ताम्रपत्र का लेख निम्न लिखितहै।

१. ॐ स्वति महानौहस्त्यश्वजयस्कंधावाराजा (द) योध्यावासकात्सर्व्व-राजोच्छेत्तु [:] पृ—

२. थीव्यामप्रतिरथस्य चतुरुदधिसलिलास्वादितयश [शो] धनदवरुणेन्द्रा—

३. न्तकसमस्य कृतांतपरशोर्न्यायागतानेकगोहिरण्यकोटिप्रदस्य चिरोच्छ—

४. न्नाश्वमेधाहर्तु [:] महाराजश्रीगुप्तप्रपौत्रस्य महाराजश्री घटोत्कचपौत्रस्य
५. महाराजाधिराजश्री चन्द्रगुप्तपुत्रस्य लिच्छिविदौहित्रस्य महादेव्या [व्यां] कु—
६. मारदेव्यामुत्पन्न [:] परभागवतो महाराजाधिराज श्री समुद्र—
७. गुप्तः गयावैषयिकरेवतिकाग्रामे ब्रा (ब्रा) ह्मणपुरोगग्रामवल—
८. त्कौषभ्यामाह । एव चार्थ (र्थं) विदितं बो (वो) भवत्वेष ग्रामो मया मातापित्रोरा—
९. त्मनश्च पुण्याभिवृद्धये भारद्वाजसगोत्राय व (ब) ह्वचाय सव (र) (ब्र) ह्मचा—
१०. रिणे ब्रा (ब्र) ह्मणगोपदेवस्वामिने सोपरिकरोद्देशेनाग्रहार्तवेनाति—
११. सृष्टः [।] तद्युष्माभिरस्य श्रोतव्यमाज्ञा च कर्तव्या सर्व्वे च समुचिता ग्रामप्र—
१२. त्यया मेयहिरण्यादयोः देयाः [।] न चे (चै) तत्प्रभृत्येतदाग्रहारि-केण (णा) न्यद्ग्रा—
१३. मादिकरदकुटुंबिकारुकादयः प्रवेशयितव्या मन्यथा नियतामाग्र—
१४. हाराक्षेप [:] स्यादिति [॥] सम्व [म्व] त् ९ वैशाख दि १० [॥]
१५. अन्यग्रामाक्षपटलाधिकृत द्यूतगोपस्वाम्यादेशलिखितः [॥]

परिशिष्ट अंक ४

हिन्दुस्तान के शक

प्रथम भारतमें किसी भी शक का रिवाज न था। किसी घटनाके वर्ष के लिखने की आवश्यकता होती तो उस राजा के राज्यकाल का वर्ष लिख दिया जाता था। इस प्रकार उस वंशका

शक चलने लगता था। अनेक बार तो कोई भी राजा गद्दीनशीन होता तो अपने पूर्वज के वंशका शक जारीरखता था। ऐसा शक राज्य स्थापन करने वाले राजा के राज्याभिषेक से प्रारम्भ होता था। कभी कोई राजा अपने राज्य में घटित महत्त्व की घटना की स्मृतिके लिये नवीन शक का आरंभ करता था। अन्तमें ज्योतिष शास्त्र की गणनासे। तथा धार्मिक ऐतिहासिक घटना को उद्देश करके बहुत से शक स्थापन किये जाते थे। ज्योतिष शास्त्रकी गणना के आधार पर मुख्यतः पांच शक प्रारंभ किये गये थे। 'ग्रहपरिवृत्ति' शक ९० वर्ष का है। यह ईसासे २४ वर्ष प्रथम शुरुहुवाथा' दक्षिणदेशमें प्रायः इसका उपयोग कियाजाताहै। 'बृहस्पति, नामक शक ६० वर्ष का है एवं वह गुरुतारा के १२ वर्ष के भ्रमण के आधार पर स्थित है। कलि नामक शक ईसासे ३१०२ वर्ष पूर्व आरंभ किया गया था। मलबार में कोल्लम नामक परशुराम का शक चालूहै। वह एक हजार वर्ष का है। उसका आरंभ ८२५ ईस्वी से है प्रतिवर्ष आश्विन मासमें सूर्य कन्या राशिपर आता है। उस समय इसका प्रारंभ होता है। कश्मीर का 'सप्तर्षि' अथवा 'लौकिक' शक प्रति दो हजार सातसौ वर्ष में सप्तर्षिका तारकसंध एक चक्कर फिरता है। इस उपपत्ति के आधारपर यह योजना हुई है। लेकिन व्यवहारमें ईस्वीसन् की प्रत्येक सदी के २५ वें वर्ष में प्रारंभ होकर सौ सौ वर्ष की गणनाके एक संवत्सररूप वह मानाजाताहैं। यह शक पूर्णतया गिनाजाता है तभी सप्तर्षि

कहलाता है । लेकिन सौ वर्ष का संवत्सर मानकर 'लौकिक' अथवा ' लोककाल ' कहलाता है ।

ऐतिहासिक घटनाओं के शकोंमें से मुख्य मुख्य काही हम वर्णन करेंगे । ईसाके ५८ वर्ष पूर्वही से विक्रम संवत शुरु होता है । कुशान राजा कनिष्क के राज्य काल की किसी घटना की स्मृति के लिये अथवा उसके राज्याभिषेक के अवसर पर यह शुरु किया गया होगा । बहुत से लोग चैत्र सुदिसे इस वर्ष का आरंभ मानते हैं । लेकिन मूलतः यह शक कार्तिक सुदिसे शुरु होता था । पश्चिम के क्षत्रप वंशों के साथ संबन्ध रखने वाला (शक) ईस्वी-सन् ७८ की चैत्र सुदिसे शकवंशीय शत्रपराजा नहपा ने इसका आरंभ किया था । एवं वल्लभी संवत् में वह मिलगयाथा । ईस्वीसन् ३२० में चन्द्रगुप्तने गुप्तशक शुरु किया था । एवं वल्लभी संवत् में इसका अन्तर्भाव होगया था । त्रैकुटक, कल्चुरि, वाचेदि शक इ. स. २४८–२४९ में शुरु हुवा था । यह शक शायद आभीर राजा ईश्वरसेन अथवा उस के पिता शिवदत्त ने शुरु किया था । चालुक्य विक्रम शक ईस्वीसन् १०७५ वा ७६ से गिना जाता है । क्योंकि उस वर्ष में पश्चिम का चालुक्य छठा विक्रमादित्य गद्दी नशीन हुवाथा । गंगा शक थोडे समयतक ५९० ईस्वी से शुरु हुवाथा । हर्ष शक सुप्रसिद्धराजा हर्षवर्धनके राज्याभिषेकसे अथत् ६०६–६०७ ईस्वीसे प्रारंभ कि याथा । ' विरोधीकृत ' शक इ स. ११९१–९२ में होयसल दूसरे बल्लालने यादवों के ऊपर

विजयके स्मरण में प्रारंभ किया था। 'लक्ष्मण सेन' वा'सेन' शक बंगाल में चलता है। ईस्वी सन् १११९ अक्तूबर की ७ वीं तारीख से इसका प्रारम्भ हुवा है। गुजरात का शिवसिंह शक का १११३ ईस्वी की मार्च १९ से प्रारंभ हुवा है। दूसरे पृथ्वी राज का 'आनन्द विक्रम शक' इ० स० ३३ से शुरुहोता है। नेवा-रवा नेपाली शक ८७८-७९ ईस्वी से शुरुहोता है। बंगाली शक ५९३-९४ ईस्वी से प्रारंभ होता है। इसके सिवाय और बहुत से छोटे मोटे शक हैं जिन के विषय में यहां लिखने की आवश्यकता नहीं क्योंकि बहुत से व्यवहार में नहीं आते। एवं अनेक तिरोहित लुप्त प्राय है।

बहुत प्राचीन काल से बौद्धलोग अपनी धार्मिक घटनायें बुद्ध के मुक्त होने के वर्ष से मानते हैं। भगवान् गौतम बुद्ध ४७८ वर्ष ईसासे पूर्व स्वर्गवासी हुवे थे। लेकिन सिंहल द्वीप आदिमें ५४४ वर्ष ईसाके पूर्व बौद्ध शक का आरंभ करते हैं। यह भ्रम पूर्ण प्रथा ईसाकी बारहवीं सदी से चलीहै। ईसासे ५२७ वर्ष पूर्व जैन लोग मानते हैं। क्योंकि इसी वर्ष में भगवान् महावीर स्वामी ने निर्वाण पथ को प्राप्त कियाथा।

(क)
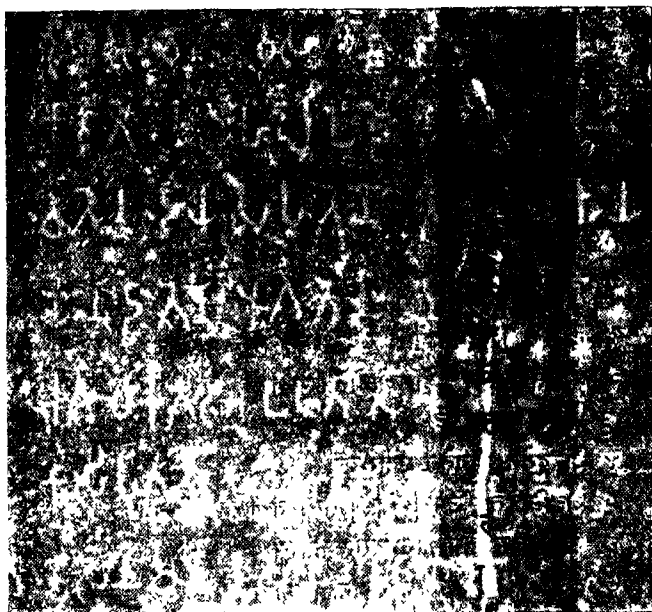
(ख)
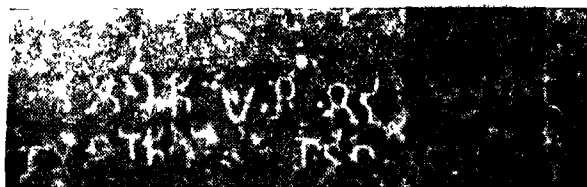
विदिशा का शिलालेख.

परिशिष्ट अंक ५

विदिशाका शिला लेख

ग्वालियर राज्य के अन्तर्गत दक्षिण की ओर बसे हुवे भिल्सा गांवके सामने बेसनगर (प्राचीन विदिशा) के खंडहरों को देखते हुवे बेटवा नदी के बहाव के पाससे यह शिलालेख प्राप्त हुवा है। एक समूचे पत्थर पर खुदा हुवा है। वह इस प्रकार है। (क)

१. द (दे) वदेवस वा (सुदे) वस गरुडध्वजेऽयम्
२. कारितोइ [अ] हेलिओडोरेण भाग
३. वतेन दियस पुत्रेण तखसिलाकेन
४. योनदूतेन आगतेन महाराजस
५. अंतलिकित उप [पां] ता [त्] सकाशं राणो
६. कासिपुतस (भ) ागभद्रस त्रातारस
७. वसेन (च) दसेन राजेन वधमानस

दूसरा (ख) लेख इस प्रकार है।

१ त्रिनि अमुतपदानि—(सु) अनुथितानि
२ नयंति स्वग दम चाग अप्रमाद

उपर्लिखित (क) लेख की प्रथम पंक्ति में ' दवदेवस ' है वह ' देवदेवस्य ' होगा। ' वावस ' का ' वासुदेवस्य ' होगा। दूसरी पंक्ति में ' इ ' है वह ' इह ' होगा। चौथीपंक्तिमें ' येन-दूतेन ' वा ' योनदातेन ' हैं परवह ' योनदूतेन ' होगा। पांचवीं पंक्तिमें दूसरा शब्द ' उपता ' है वह पूर्वापर संबन्ध के विचारसे

' उपान्तात् ' होगा । संकाशराणो वहं ' सकाशं राणो ' ऐसापाठहै। छठीपंक्तिमें ' कासिपुतस ' है वह ' काशिपुत्रस्य ' है। उसके बाद ' भागभद्रस्व ' है । सातवींपंक्तिका ' वांशेन ' को ' वारसेन' ' वशेन ' बांचते हैं परन्तु वह ' वसेन ' है । बहुतसे कहते हैं वह चंडदासेन है । अन्तिम शब्द ' वधमानस ' है वह ' वर्धमानस्य ' होगा । चंडदास राजाका नाम न होकर वर्षका उल्लख है तब वह 'चतुदसेन' होगा । ऐसा करनेपर उनपंक्तियोंका यह अर्थ होताहै–

" देवों के देव वासुदेव का यह गरुडध्वज । अपने राज्यकालके चौदहवें वर्षमें उत्का ऐश्वर्य से राज्य करते हुवे रक्षक राजा काशिपुत्र भागभद्रके समीप महाराजा अंतालिकित (ॲन्टलिकडास) के तरफसे योनदूत रूपसे आये हुवे भागवत (विष्णु) के भक्त दिय (डायन) का पुत्र तक्षाशिला (टॅकसिला) का वास्तव्य हेलिओडोरने (हेलियोडोरसने) यहां खड़ा करवाया है । "

अबतक प्राप्तहुवे सिक्कों के आधार से ऐसा कह सकते हैं कि महाराजा ॲन्टल्किडास युक्रेटाइडीसके वंश का था, एवं बक्ट्रियामें व काबुल प्रदेशमें राज्य करता था । उसने दूत रूपसे भेजे हुए ग्रीक हेलिओडोरसने (डायन के पुत्रने) विदिशा (बेसनगर)में आकर ब्राह्मण धर्म का स्वीकार किया था, और यह गरुडध्वज विष्णु भगवान के सन्मानार्थ खडा करवाया था । राजा भागभद्र विदिशा के प्रान्त में राज्य करता था । यह प्रान्त शुंग लोगों के अधिकार में था । इससे यहप्रतीत होता है कि पुराणों में

पुष्पमित्र के वंशधरों में से भद्र के विषयमें कहा है वही यह भागभद्र होगा। ॲन्टिकिडास का समय बहुतसे इ. स. के पूर्व १७५ कहते हैं कोई १३५ वर्ष पूर्व कहते हैं। इस शिलालेखकी लिपि उससमय की ब्राह्मीलिपिसे मिलती हुई है।

दूसरे (ख) लेखमें प्रथम पंक्तिका प्रथम शब्द ' त्रिनि ' है उसको ' त्रिनि ' ' तिनां ' ऐसा बांचतेहैं। परन्तु ' त्रिनि ' शब्दही यथार्थ में है। उसके बाद ' अमुतपदानां ' है वस्तुतः वह (अमुतपदानि) ही है। स्थानरिक्त न होनेसे आगे ' काले ' शब्द होगा, ऐसा कोई कहतेहैं परन्तु अर्थका विचार करनेसे 'सु' शब्दहोगा। अन्तिमशब्द ' अनुथितानि ' होनाचाहिये। परन्तु बहुतसे ' अनुथितानां ' पढ़ते हैं। ' नेयति ' वा 'नेयाति' दूसरी पंक्तिका अन्तिमशब्द है यथार्थ में वह 'नयति' है। ' स्वग ' को कोई ' व ' तो दूसरे ' वुत्तम ' कहते हैं उसके बाद तीन शब्द ' दमोचाग अप्रमादो ' अथवा 'दमं चाग अप्रमादो' ऐसापढते हैं। वास्तवमें 'दमं चाग अप्रमाद' होगा। इसप्रकार से उक्त दोपंक्तियोंका अर्थ यह है।

" अमरत्त्व प्राप्तकरनेके लिये तीनरास्ते हैं। इन रास्तों से अगर ठीक ठीक जावें तो स्वर्गमें पहुंचसकते हैं। वेशब्दयेहैं दम त्याग, अप्रमाद।

परिशिष्ट अंक ६

द्वितीय कुमार गुप्तकी मुद्रा

वायव्य प्रान्तोंके गाज़ीपुर जिलेके सैयदपुर तहसील के भीतारी गांवमें खुदाई का कार्य करते हुवे, द्वितीय कुमार गुप्त की मुद्रा ४० वर्ष पूर्व मिली थी। इस समय यह लखनौ के अजायब घर में सुरक्षित है। यह मुद्रा लंबगोळ किनारेपर बारीक ४½ तसु लंबी ५¾ तसु ऊंची है।

यह मुद्रा मिश्र धातुकी है उसमें ६२·९७ भाग तांबा ३६·२२५ भाग चांदी ०·४०५ भाग सोना तथा ४ भाग लोहा है। उसका भार ५९½ तोला है। उसपर मुख्य गरुडका चिन्ह है। उसका मुख मनुष्य तथा शेष सबके पक्षी के समान है। बाल टोपी के रूपमें संवारे हुवे हैं। गलेमें सांप है। उसके दहिने पंखपर विष्णु चक्र है बांए पंखपर शंख है। उसके नीचे संस्कृत भाषामें कुछ लिखा हुवा है। आठ पंक्तियोंमें गुप्तवंशावली है।

१. [स] व राजोच्छेतुः पृथिव्यामप्रतिरथस्य महाराजश्री ग(गु)प्तप्र-पौत्रस्य महाराजश्री घटोत्कचपौत्रस्य म [हा]—

२. [राजा] धिर (रा) जश्री चंद्रगुप्तपुत्रस्य लिच्छव (वि) (दौहित्र) य (स्य) म [हादे] व्या (व्यां) [कुमा] रद (दे) व्यामुत्पन्नस्य महाराजाधिराज-

३. [श्री] समुद्रगुप्तस्य पुत्रस्तत्परिग (गृ) ह (ही) तो म [हादे] व्या-(व्यां) [द] त (त्त) द (दे) व्य (व्या) मुत्पन्नस्त्वय च (चा) प्रतिरथः परमभाग—

४. [वतो महा] र (रा) (जा) धिराजश्री चंद्रग (गु) प (प्त) (स्त) स्य प (पु) त (त्र) स्तत्पाद (दा) नुध्य (ध्या) तोमहा-देव्य (व्यां) ध्र (ध्र) वदेव्यामुत्पन्नोमह (हा) र (रा)—

५. [जाधि] राजश्री कुमारग (गु) प्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातो महा-देव्यामनन्तदेव्य (व्या) मुत्पन्नो महा [रा]—

६. [जा] ध (धि) र (रा) जश्रीपुरग (गु) प (प्त) स्तस्यपुत्र-स्तत्पादानुध्य (ध्या) त (तो) महादेवा (व्यां) श्रीवत (त्स) देव्यामुत्पन्न (न्नो) म [हा]—

७. र (रा) ज (जा) ध (धि) र (रा) जश्रीनरसं (सिं) हगुप्तस्य-पुत्रस्तता (त्पा) दा (नु) ध्य (ध्या) प (पु) त (तो) मह (हा) द (दे) व (व्या) श्रीमहा [लक्ष्मी ?]—

८. [दे] व (व्या) मुत (त्प) न्नः परमभ (भा) गवतो मह (हा) र (रा) ज (जा) ध (धि) र (रा) जश्री कुम (मा) रग [गुप्तः ॥]

शिष्ट अंक ७

गिरनारपर स्कन्दगुप्तका लेख

काठियावाडके जूनागढ़ के पश्चिम एक कोसके फासलेपर वर्तमान गिरनार पर्वत की उपत्यकामें लगभग १२ पाद ऊंचा एवं बैठक के आगे ७५ पाद का घेरवाला एक पत्थर है। उस पर मौर्य राजा अशोक का महाक्षत्रपरुद्रदामाका एवं गुप्तराज स्कन्द-गुप्तका शिलालेख खुदाहुवा है। स्कन्दगुप्तका लेख उसके पश्चिम भाग पर है। वह इस प्रकार है।

१. सिद्धम् श्रियमभिमतभोग्यां नैककालापनीतां त्रिदशपतिसुखार्थं यो बलेराजहार कमलनिलयनायाः शाश्वतं धाम लक्ष्म्याः

२. स जयति विजितार्तिर्विष्णुरत्यन्तजिष्णुः तदनुजयति शश्वत् श्रीपरिक्षिप्तवक्षाः स्वभुजजनितवीर्यो राजराजाधिराजः नरपति—

३. भुजजानां मानदर्पोत्फणानां प्रतिकृतिगरुडाज्ञा निर्विषिश्चावकर्ता नृपतिगुणनिकेतः स्कन्दगुप्तः पृथुश्रीः चतुरुदधिजरत्नां स्फीतपर्यन्तदेशाम्

४. अवनिमवतारि यैश्चकारात्मसंस्थां पितरि सुरसखित्वं प्राप्तवत्यात्मशक्त्या अपि च जितमिव तेन प्रथयति यशसि यस्य रिपवोपि आमूलभग्नदर्पानिव वदने म्लेच्छदेशेषु

५. क्रमेण बुध्या निपुण प्रधार्य ध्यात्वा च कृत्स्नान्गुणदोषहेतून् व्यपेत्य सर्वान्मनुजेन्द्रपुत्रांल्लक्ष्मीः स्वयं यं वरयाचकार तस्मिन्नृपे शासति नैव कश्चिद्धर्मादपेतो मनुजः प्रजासु

६. आर्तो दरिद्रो व्यसनी कदर्यो दण्डयो न वा यो भृशपीडितः स्यात् एवं स जित्वा पृथिवीं समग्रां भग्नाग्रदर्पान्द्विषतश्च कृत्वासर्वेषु देशेषु विधाय गोप्तॄन् संचिन्तयामास बहुप्रकारम् स्यात्कोनुरूपो

७. मतिमान्विनीतो मेधास्मृतिभ्यामनपेतभावः सत्यार्जवौदार्यनयोपपन्नमाधुर्यदाक्षिण्ययशोन्वितश्च भक्तोनुरक्तो नृविशेषयुक्तः सर्वोपधाभिश्च विशुद्धबुद्धिः आनृण्यभावोपगतान्तरात्मा सर्वस्य लोकस्य हिते प्रवृत्तः

८. न्यायार्जनेनर्थस्यचकः समर्थः स्यादर्जितस्याप्यथ रक्षणे च गोपायितस्यापि च वृद्धिहेतो वृद्धस्य पात्रपतिपादनाय सर्वेपु भृत्येष्वपि संहतेपु यो मे प्रशिष्यान्निखिलान्सुराष्ट्रान् आज्ञातमेकः खलु पर्णदत्ते भरस्य तस्योद्वहने समर्थः

९. एवं विनिश्चित्य नृपाधिपेन नैकानहोरात्रगणान्स्वमत्या यः संनियुक्तोर्थनया कथंचित् सम्यक्सुराष्ट्रावनिपालनाय नियुज्य देवा वरुणं प्रतीच्यां स्वस्था यथावन्मनसो बभूवुः पूर्वेतरस्यां दिशि पर्णदत्त नियुज्य राजा धृतिमांस्तथाभूत्

१०. तस्यात्मजो ह्यात्मजंभावयुक्तो द्विधेव चात्मात्मवशेन नीतः सर्वात्मनात्मेव च रक्षणीयो नित्यात्मवानात्मजकान्तरूपः रूपानुरूपैर्ललितैर्विचित्रै नित्यप्रमो (दा) न्वितसर्वभावः प्रबुद्धपद्माकरपद्मवक्त्रो नृणां शरण्यः शरणागतानाम्

११. अभवद्भुवि चक्रपालितोसाविति नाम्ना प्रथितः प्रियो जनस्य स्वगुणैरनुपस्कृतैरुदात्तः पि (त) रं यश्च विशेषयांचकार क्षमा प्रभुत्वं विनयो नयश्च शौर्यं विनाशौर्यमक ? नं च...मादानमदीनता च दाक्षिण्यमानृण्यमशून्यता च सौंदर्यमार्येतरनिग्रहश्च अविस्मयो धैर्यमुदीर्णता च

१२. इत्येवमेतेऽतिशयेन यस्मिन्नविप्रवासेन गुणा वसन्ति न विद्यते सौ सकलेपि लोके यत्रोपमातस्य गुणैः क्रियेत स एव कात्स्न्र्येन गुणान्वितत्वात् बभूव नृणामुपमानभूतः इत्येवमेतानधिकानतोन्यान्गुणान्परीक्ष्य स्वयमेव पित्रा यस्सन्नियुक्तो नगरस्य रक्षां विशेष्यपूर्वान्चकार सम्यक्

१३. आश्रत्य वीर्यं स्वभुजद्वयस्य स्वस्यैव नान्यस्य नरस्य दर्पनोद्वेजयामास स कंचिदेवमस्मिन्पुरे चैव शशास दुष्टा (न्) विस्रंभमल्पश्च शशाम यस्मिन् काले स लोकस्य च नागरेषु यो लालयामास...पैरवर्गान्... पुत्रान्स परीक्ष्य दोषान् सरंजयां च प्र?तीर्बभूव पूर्वं स्मिता भाषणमानदानैः

१४. निर्यंत्रान्योन्यग्रहप्रवेशैः संवर्द्धितप्रीतिग्रहोपचारैः ब्रह्मण्यभावेन परेण युक्तः शक्तः शुचिर्दानपरो यथावत् प्राप्यान्सकाले विषयान्सिषेवे धर्मार्थयोश्चाप्यविरोधनेन (जवनर्नीतवक्र) पर्णदत्तात्सन्यायवानत्र क्रमास्ति चित्रम् मुक्ता कलापाम्बुजपद्मशीतांचंद्रार्तिकमुष्णं भविता कदाचित्

१५. अथ क्रमेणाम्बुदकाल आगते निदाघकाल प्रविघटा (तोयदे) ववर्ष तोयं बहु संतत चिरं सुदर्शनं येन विभेदचात्वरात् संवत्सराणामाधिके शते तु त्रिंशद्भिरन्यैरपि तद्भि (षड्भि) रेव रात्रौ दिने पोष्ठपदस्य षष्ठे गुप्तस्य कालागणनां विधाय

१६. इमाश्च या रैवतकाद्विनिर्गता पालाशिनीयं सिकताविलासिनी समुद्रकान्ताः चिरबन्धनोषिता द्ययुः पति ताश्च यथोचितं ययुः अवक्ष्य वर्षान्तमजं मदोद्रम महोदधेरुर्नयता प्रियेप्सुना अनेक वीरान्तजपुष्पशोभितो

१७. नदीमयो हस्त इव प्रसारितः विषाद (मानाः खलु सर्वलो) काः कथं कथंकार्यमिति प्रवादिनः मिथोहि पूर्वापररात्रमत्थिता विचिन्तया चापि बभूवुरुत्सुकाः अपीहलोके सकेल सुदर्शनं पुमांहि दुर्दर्शनता गतं क्षणात्

१८. भवेन्न साम्भो निधितुल्यदर्शनं सुदर्शनं...वणगसभूत्वा पितुःपरोभाक्ति- मति प्रदर्श्य धर्मं पुरोधाय शुभानुबंधं राज्ञो हितार्थं नगरस्य चैव संव- त्सराणामाधिके शतेषु

१९. त्रिंशद्भिरन्यैपि सप्तभिश्च प्र.........स्थचैत्र...श्रा (श्वा) प्यनुज्ञात- महाप्रभावः आज्यप्रणामैर्विबुधानयेष्ट्वा धनैर्द्विजातोनपितर्पयित्वा पौरांस्त- थाभ्यर्च्यथार्हमानैः भृत्यांश्च पूज्यान् सुहृदश्चदानैः

२०. ग्रैष्मस्य मासस्य तु पूर्वप......प्रथमेहि सम्यक् मासद्वयेनादरवान्स भूत्वा धनस्य कृत्वा व्ययमप्रमेयम् आयामतो हस्तशतं समग्रं विस्तारतः षष्टिरथापि चाष्टौ

२१. उत्सेधकोन्यरपुरुषानिस......स्तशतद्वस्य बबंध यत्नान्महता (नृदेवा न्) सुसम्यग्घटितोपलेन...सुजातिदुष्टात्प्रथितं तटाकं सुदर्शनं शाश्वनकल्प- कालम्

२२. अपि च सुदृढसेतुप्रान्तनिन्यस्तशोभं रथचरणसमाव्हक्रौंचहंसं स धूतं विमलसलिल...भुवित......वदर्कः शशिप्र—

२३. नगरमपि च भूयाद्वृद्धिमत्पौर जुष्टं द्विजबहुशतगीतब्रह्मनिर्नष्टपापं शतमपि च समानाभीतिदुर्भिक्ष...................................... दर्शनतटाकसंस्कारग्रंथारचना समाप्त.

२४. दृप्तारिदर्पप्रणुदः पृथुश्रियः स्ववंशकेतोः सकलावनीपतेः......... ज्यद्भुतपुण्य......द्वीपस्य गोप्ता महतां च नेता दण्डान्विना

२५. द्विषतां दमायत्तस्यात्मजेनात्मगुणान्वितेन गोविन्दपादार्पितजीविते......
न विष्णोश्च पादकमले समवाप्य तत्र अर्थव्ययेन

२६. महता महता च कालेनात्मप्रभावनतपारैजनेन तेन चक्रं विभर्ति रिपु...
विशे............तस्य स्वतंत्रविधिकारण मानुषस्य

२७. कारितमवक्रामति चक्रभृतः चक्रपालितेन गृहं वर्षशेतष्टात्रिंशे गुप्ता नां
काल (तोव्यतीते)........र्थे...स्थितनवोजयंताचलस्य

२८. कुर्वन्प्रभुत्वामिव भाति परस्य मूर्ध्निद ....अन्यच्च मूर्द्धनि अ......

इ. स. १८६१ में स्वर्गस्थ भाऊ दाजी ने उपर्लिखित लेख बांचाथा। इस लेख में परिगणित व्यक्तियों को यहां बतलाने की अवश्यकता नहीं है। उसमें गुप्तशक के १३६, १३७, १३८ वर्ष दिये हैं। वह ईस्वीसन के ४५६–४५७–४५८ वर्ष हैं। हम छटे परिशिष्ट में बांच गये हैं कि द्वितीय कुमार गुप्त के मुद्रा के लेख में गुप्त राजाओंकी वंशावली दीगई है। उसमें स्कन्द गुप्त का नाम नहीं दीख पड़ता। गिरनार का यह लेख स्कन्द गुप्तका है। तब इसमें सत्य क्या है यह जानना चाहिये। वायव्य प्रान्तके गोरखपुर जिलेमें स्थित कुहेओन गांवसे पाई हुई लाटपर स्कन्दगुप्तका गुप्त शक १४१ कालेख है एवं गंगा किनारेपर के अनूपशहर के नजदीक के इन्दोर गांवसे प्राप्त ताम्रपट में स्कंद गुप्तका गुप्तशक १४६ का दान लेख है इससे यह कह सकते हैं कि स्कन्दगुप्त नामक राजा गुप्तवंशमें अवश्य हुवा था। किसी कारणसे कुमारगुप्त की मुद्रामें उसका नाम लिखना रह गया होगा।

समाप्त.

श्री सयाजी साहित्यमाला

सूचीपत्र

---

(१) **तुलनात्मक धर्म्म विचार** अनुवादक राजरत्न व्याख्यानवाचस्पति आत्मारामजी इन्स्पेक्टर बड़ौदा मू. १) अंग्रेजी तथा युरोप की भिन्न भिन्न भाषाओं में विविध देशों की भाषा, धर्म्म भावना, संसार घटना, पुराण कथा इत्यादि के अनेक ग्रन्थ तुलनात्मक परीक्षा करने वाले हैं परन्तु खेद है कि हमारी भाषाओं में ऐसी तुलनात्मक पुस्तकों का एकदम अभाव ही है, अतः हमारा इस ओर प्रयत्न करना नवीन साहित्य तय्यार करना है, तथा यह प्रथम प्रयास ही है। इस तुलनात्मक ढंग पर लिखी गई पुस्तक में यज्ञ, जादु, पितृपूजा, भावी जीवन, द्वंद्ववाद, बौद्ध धर्म्म, एकेश्वरवाद, पर विवेचन किया गया है तथा अनुवादक महोदयने अपनी भूमिका में विद्वत्ता पूर्ण विचार प्रगट किया है जिससे कि प्रत्येक मनुष्य को विदेशीय विचारों के साथ साथ अपने धर्म्म विचार क्या है यह सहज में मालूम हो जाता है। सुन्दर सजिल्द पुस्तकका मूल्य १)

आर्यमित्र "तुलनात्मक धर्म्म विचार हर्ष की बात है कि इस समय हिन्दीसाहित्य में भी तुलनात्मक पुस्तकें निकलने लगीहैं। हम अनुवादक के इस प्रयत्नको सर्वथा सराहनीय समझते है। इस पुस्तक में यज्ञ, जादु, पितृपूजा, भावीजीवन, द्वंद्ववाद, बौद्धधर्म, तथा एकेश्वरवाद पर विवेचन किया गया है। इस पुस्तकसे प्रत्येकमनुष्यको विदेशीय विचारो के साथ २ अपने धर्म विचारभी सहज मेही मालूम हो जाते है। पुस्तक सब दृष्टियोसे अच्छी है, जिल्द बंधी हुईहै तथा छापाभी अच्छाहै इससे पुस्तक की उपादेयता और बढ जाती है"

माडर्नरिव्यु "The cause of useful literature in Hindi is veing furthered by the Gaekwar of Baroda who has inspired a zeal for the uplift of vernacular literature.

Both the translation and get up of the book under notice are praise worthy. This book is a aluable addition to Hindi religious literature."

२ अवतार रहस्य अर्थात भारतीय तथा युरोपीय पुराण कथाओं का तुलनात्मक समीक्षा मृ. ॥।≈ यह एक दूसरा गवेषणात्मक अपने ढंग की अनूठी पुस्तक है अनुवादक श्री शान्तिप्रिय आत्मारामजी इसमे निम्न लिखित विषय है। भाषाशास्त्रकी उत्पत्ति, आर्यकुल और उसका आदि निवासस्थान, कूट प्रश्न और उसका समाधान, युग लक्षण तथा तज्जनित अनुमान, हिंदु तथा पारसियों के पूर्वजो का सपिण्डत्व, वस्तु विभाग, युरोपकी पूर्वकालीन तथा वेदकालीन कथायें विश्वोत्पत्ति, द्यौष्पितर, वरुण, इन्द्र, अग्नि, सूर्य, सोम, उषस्, यम, वायु, अश्वि· नौ, हिंदुओं के पुराण, पुराणोक्त विश्वोत्पत्ति, देवताओं की उत्पत्ति, ब्रह्मा, वरुण इन्द्र, अग्नि, सूर्य, विष्णु, मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, राम, रामायण तथा इलियड, कृष्ण, बुद्ध, कल्कि, चन्द्र, उषा, यम, वायु, अश्विनौ प्रकीर्ण उपसंहार विषयान्वित सुंदर छपी पुस्तक का मूल्य ॥।≈) बिना जिल्द ॥।)

Modern Review 1916:—" The title of the book shows very well what it contains. The writer has been at great pains over the subject matter of his work and furnishes not only interesting reading but **food for thought.** To those who do not know much about the origin of our Puranic legends, there is much to learn and to these who know about them there is an opportunity given for checking their inferences or conclusions."

३ कोष की कथा ले० श्री शान्तिप्रिय आत्मारामजी, सचित्र वैज्ञानिक पुस्तक cell का पूर्ण परिचय देती है जीव कोष क्या क्या कार्य्य शुरु से

अन्ततक करता है यह इस पुस्तक में भली प्रकार दर्शाया है। आज तक हिन्दी भाषा में इस प्रकार की कोई भी पुस्तक न थी यह पहिली ही पुस्तक है। पुस्तक बडी उपयोगी है मूल्य ॥) सम्मति माडर्न रिव्यूकी इस प्रकार है।

Kosh ki Katha " The munificence and far sightedness of Maharaja Sayajirao Gaekwar of Baroda have instituted a very most useful and fascinating work in the shape of a series of juvenile booklets called the *Sayaji* Bal jnana Mala. The booklet under notice is the story of the cell told most plainly. The illustrations will add to the utility of the work, and the glossary of technical terms is most helpful. The get up gives credit to the publishers. "

श्रीयुत पुरोहित हरिनारायणजी शर्म्मा बी. ए. विद्याभूषण जयपुर, "**कोषकी कथा** का पढ़ाई से मेरा विद्याकोष बढ़ा है। मेरा खयाल है कि इस सम्बन्ध में पुस्तक रूपेण कोई चेष्टा नहीं हुई "

आर्यमित्र " **कोषकीकथा** यह एक सुयोग्य लेखक की पुस्तक का अनुवाद है इस पुस्तकमें यह दर्शानेका प्रयत्न किया गया है कि cell और कोष एक ही बात है। प्राणिशास्त्र के विषय पर हिन्दी भाषा में ऐसी सरल पुस्तकें निकलना अच्छी बात है। यह पुस्तक प्राणिशास्त्र के छात्रों के लिए बडा सहायक होगी। युरोप के विद्वानों के विचारों का समावेश भी इसमें किया गया है। छपाई तथा कागज अच्छा है मू० ॥) "

ज्योति " **कोषकी कथा**–प्राणविद्या में सेल (cell) शब्द कईवार-प्रयोग होता है। आजकल के वैज्ञानिकों के मत में किसी भी जीवित वस्तु में उसका सबसे सूक्ष्म भाग सेल अर्थात् कोष है। इन्हीं अगनित कोषों के मेलसे जीव जन्तु वनस्पति इत्यादि बनते हैं। इस पुस्तक में इसी कोषकी

कथा दी गई है । कोष क्या वस्तु है यह किस प्रकार जीवित शरीर मे अपनी क्रिया करता है और किस प्रकार शरीर की भिन्न अवस्थाओंपर अपना प्रभाव डालता है और उनसे प्रभावित होता है यह बातें मनोरंजक भाषामें वर्णन की गई हैं पुस्तक का विषय वैज्ञानिक है । यह हिन्दी भाषाके सौभाग्य की बात है । कि अब इस में विज्ञान सम्बन्धी पुस्तको का निकलना भी आरंभ हो गया है । इस ओर ध्यान देने के लिए प्रकाशक हमारे धन्यवाद के पात्र हैं ।"

४ **श्री हर्ष** अनुवादक श्री आनन्द प्रियजी बी. ए. एल एल बी. हिंदी भाषा मे यह दोनों पुस्तकें बडौदा इंदोर तथा मध्य प्रदेश और बरार के विद्याधिकारियों के द्वारा पाठशालाओं में इनाम तथा पुस्तकालयो के लिए मंजूर किया गया है । इस में निम्नलिखित विषय हैं हर्ष के पूर्वज, पुष्प भूति, प्रभाकर वर्धन, मौखरि-वंश हर्ष का जन्मकाल, प्रभाकर की मृत्यु ग्रहवर्मा राज्य वधन की मृत्यु, हर्ष की दिग्विजय निमित्त कूच राज्यश्री की खोज हर्ष का राज्याभिषेक, उस के दया धर्म्म के कार्य तथा मृत्यु, हर्ष के समय के राजे राज्य आदि, साहित्याकार राजा हर्ष कवि के रूप में हर्ष के हस्ताक्षर शिलालेख इत्यादि मूल्य ॥)

माडर्न रिव्युकी सम्मति—

" **Sri Harsha** This is another publication of the above named series. The history of the Emperor Harshavardhana is presented is this nicely got up little book. The autograph signature of the emperor and the two appendices which give Madhuvana and the Bansakhera inscriptions have enhanced the charm & utility of the work. Thus the book will be found useful not only by a little advanced students but also the general public."

आर्यमित्र "श्री हर्ष इस छोटी सी पुस्तक के पढन से मालूम होजाता है कि भारत के प्राचीन इतिहास की सामग्री किस प्रकार संस्कृत साहित्यमें भरी पडी

है। इस पुस्तक के पढ़नेसे बहुत सी ऐतिहासिक बातें मालूम होजाती हैं। पुस्तक बालकों के लिए लिखी गई है पर इस से सभी लाभ उठा सकते हैं। कागज़ तथा छपाई अच्छी है। मू० ॥)"

श्रीयुत पुरोहित हरिनारायणजी शर्मा बी. ए. विद्याभूषण जयपुरसे लिखते हैः—

"**श्री हर्ष** को पढ़ कर अतीव हर्ष हुआ। यह पुरातत्वमें बड़े काम की पोथी हुई है। इस प्रकार की किताबों से हमारी जरूरतें पूरी होंगी।"

ज्योति श्री हर्ष "हर्षवर्धन भारतका अन्तिम आर्य सम्राट हुआ है, उसके आदित्य जीवन, प्रखर प्रताप तथा समृद्धिशाली राज्य का वर्णन कवि बाणने अपने श्रीहर्ष नामक काव्य में बड़ी ओजस्विनी और मधुर भाषा मे किया है यह पुस्तक बाणकी संस्कृत पुस्तक और चीनी यात्री हुयेनत्संग के विवरण तथा इसी प्रकार इधर उधर फैली हुई अन्य सामग्री के आधार पर लिखी गई है। पुस्तक के पाठसे एक बार हर्ष के समय का चित्र आंखों के सामने खिंच जाता है। पुस्तक का विषय ऐतिहासिक है और अनुसन्धान पूर्वक लिखी गई है। इसके पाठसे हिन्दी भाषा जाननेवालो को उस समय के इतिहास का बड़ा अच्छा ज्ञान हो सकता है।"

हिन्दी जेकब्स "इस पुस्तक में महाराज और महा कवि श्री हर्ष का जीवन वृत्तान्त है और ऐतिहासिक दृष्टिसे लिखे जाने के कारण पुस्तक का महत्त्व बहुत बढ़ गया है। इससे उस समय के इतिहास पर अच्छा प्रकाश पडता है और लेखकके अनुकरणीय अध्ययन का पता चलता है इतिहास प्रेमियों के लिए पुस्तक बहुत ही उपयोगी है। विषयक्रम व्यवस्थित और लेख शैली उत्कृष्ट है। हम लेखक के इस प्रयास का हृदयसे सराहना करते है।"

श्री सयाजी साहित्यमाळा.

छपायेलां पुस्तक.	किंमत.
१. विज्ञान-गुच्छः—	
२. भूपृष्ठविचार (सचित्र).	०-१०-०
११. देहधर्मविद्यानां तत्त्वो.	१-०-०
१२. विज्ञानप्रवेशिका.	०-११-०
१३. जिंदगीनो विमो.	०-११-०
१७. उद्भिज्जविद्यानुं रेखादर्शन (सचित्र).	१-०-०
१८. करोळीआ (सचित्र)	०-१४-०
२२. प्राणीविद्यानुं रेखादर्शन (सचित्र).	१-०-०
२५. मनुष्यविद्यानां तत्त्वो.	१-०-०
३५. जिवविद्या (सचित्र).	१-०-०
३८. तुलनात्मक भाषाशास्त्र.	१-४-०
४६. राजनीतिनो संक्षिप्त इतिहास.	१-४-०
४७. समाजशास्त्रप्रवेशिका.	१-४-०
४८. बाळउच्छेर.	१-८-०
५०. बाळस्वभाव अने बाळउछेर	१-८-०
५१. शरीरयंत्रनुं रेखादर्शन. (सचित्र)	१-४-०
६७. प्राणीसृष्टि (सचित्र)	१-८-०
७०. रसायणप्रवेशिका (सचित्र).	१-४-०
७५. वडोदरानुं अर्थशास्त्र.	०-१२-०
८४. सनईवादन पाठमाला पु. ३ (मराठी).	१-२-०
८५. सदर सदर पु. ४. (मराठी.)	१-१२-०
८६. अवताररहस्य. (हिंदी)	०-१४-०
२. चरित्र-गुच्छः--	
८. प्रेमानंद (सचित्र).	१-०-०
१४. दयाराम.	०-११-०

२०. मीरांबाई. ०-१२-०
३०. गिरधर. ०-१४-०
३३. भालण (सचित्र) १-०-०
४०. तुकाराम (सचित्र) ०-१४-०
४१. महाराजा शिवाजी (मराठी) (सचित्र) १-६-०
४५. विष्णुदास. १-०-०
४९. वीर शिवाजी (सचित्र) १-०-०
५३. मकिशंकर कीकाणी. १-६-०
६२. दलपतराम. १-२-०
७१. समुद्रगुप्त ०-१३-०
७७. चक्रवर्ती अशोक ०-१४-०
७८. **समुद्रगुप्त.** (हिंदी) ०-१२-०

३. इतिहास-गुच्छः—

१. संस्कृत वाङ्मयाचा इतिहास (मराठी) २-८-०
९. जगत्नो वार्तारूप इतिहास, भाग १ लो. ३-८-०
१९. ब्रिटिश राष्ट्रीय संस्थाओ. ०-१३-०
२४. पॅलेस्टाईननी संस्कृति. ०-१२-०
२६. जगत्नो वार्तारूप इतिहास, भाग २ जो १-०-०
३२. पार्लामेन्ट. १-४-०
३४. इतिहासनुं प्रभात. १-४-०
४३. नवीन जपाननी उत्क्रांति. १-०-०
५५. चीननी संस्कृति १-६-०
६५. हिन्दुस्थानचा अर्वाचीन इतिहास—मराठी रियासत (मध्यविभाग) भा. १. (मराठी) २-१२-०
६६. सदर भाग २ रा. ,, २-१२-०
६८. सदर भाग ३ रा.
६९. हिंदुस्ताननी संस्कृति. १-१२-०
९०. मराठ्यांच्या प्रसिद्ध लढाया (मराठी) ३-०-०

४. वार्ता–गुच्छः—

३. आपणा लघुबन्धु अंग्रेज (अंग्रेज बालजीवन बीजी आवृत्ति.) १-०-०
४. अलकानो अद्‌भुत प्रवास (सचित्र). बीजी आवृत्ति. १–४–०
१६. वीर पुरुषो. ०-१२-०

५. धर्म-गुच्छः—

६. हिंदुस्थानना देवो (सचित्र). ४-०-०
२३. दीर्घनिकाय (भा. १ ला.) (मराठी) १-८-०
३२. तुलनात्मक धर्म विचार ०-१२-०
३६. धर्मनां मूळतत्वो. ०-१०-०
४२. विविध धर्मोनुं रेखादर्शन. ०-१२-०
४४. उत्तर युरोपनी पुराण कथा. ०-१४-०
८०. **तुलनात्मक धर्मविचार (हिंदी).** १-०-०

६. नीति गुच्छः—

५. माबापाने बे बोल (त्राजी आवृत्ति). ०-६-०
७. नीतिशास्त्र. ०-१४-०
२७. नीति विवेचन. १–२–०
२९. कॉबेटनो उपदेश ०–१५–०
३७. नैतिक जीवन तथा नैतिक उत्कर्ष. ०–१५–०

७. शिक्षण गुच्छः—

१०. बालोद्यानपद्धतीचें गृहशिक्षण (सचित्र) (मराठी). ०-१०-०
२८. बालोद्यानपद्धतीनुं गृहशिक्षण (सचित्र). ०-१४-०
५२. शाळा अने शिक्षणपद्धति. ०-१५-०

८ प्रकीर्ण गुच्छः—

१५. सुधारणा आणि प्रगति. (द्वितीयावृत्ति) मराठी ३-०-०
२१. शिस्त (मराठी) १-०-०
३९. हिंदुस्तानचा लश्करी इतिहास व दोस्तराष्ट्रांच्या फौजा (मराठी) २-८०
५४. संस्कृति अने प्रगति २-८-०
७३. जवाबदार राज्यपद्धति (मराठी). ०-१३-६

श्री सयाजी बालज्ञानमाळा.

छपायेलां पुस्तकोः--

१	गिरनारनुं गौरव (बीजी आवृत्ति) सचित्र	० ६-०
२	ऋतुना रंग (बीजी आवृत्ति)	०-६-०
३	शरीरनो संचो (बीजी आवृत्ति) सचित्र	०-६-०
४	माहाराणा प्रताप (बीजी आवृत्ति) सचित्र	०-६-०
५	कोषनी कथा (बीजी आवृत्ति) सचित्र	०-६-०
६	पाटण सिद्धपुरनो प्रवास बीजी आवृत्ति	०-६-०
७	पावागढ़ (बीजी आवृत्ति)	०-६-०
८	औरंगज़ेब (बीजी आवृत्ति) सचित्र	०-६-०
९	मधपुडो (बीजी आवृत्ति) सचित्र	०-६-०
१०	रणजीत सिंह (बीजी आवृत्ति) सचित्र	०-६-०
११	सुखी शरीर (बीजी आवृत्ति)	०-६-०
१२	श्री हर्ष ,,	०-६-०
१३	सूर्यकिरण (सचित्र)	०-६-०
१४	वातावरण	०-६-०
१५	ग्रहण. (सचित्र)	०-६-०
१६	बाल नेपोलीअन.	०-६-०
१७	**कोषकी कथा** (हिन्दी) सचित्र	०-८-०
१८	लोहीनी लीला	०-६-०
१९	**श्री हर्ष** (हिन्दी)	०-८-०
२०	सिकंदरनी स्वारी	०-६-०
२१	सुरत	०-६-०
२२	एशियानी ओळखाण भाग पहेलो	०-६-०
२३	भूस्तरनी कथा.	०-६-०
२४	लॉर्ड विलियम बेन्टिक	०-६-०
२५	नाना फडनवीस	०-६-०
२६	चंद्र	०-६-०